विजयी प्रताप

प्रताप नाटक

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—उदयपुर, प्रताप का गृहोद्यान

समय—प्रभात

(राणा प्रताप चितित अवस्था मे घूम रहे हैं)

प्रताप—यह विश्व भी एक महान युद्ध-स्थल है । जहाँ देखो, चारों तरफ़, युद्ध, युद्ध, युद्ध । सदियों से यह अभागा भारत इसी युद्ध की भयंकर ज्वालाओं मे धॉय धाँय करके जल रहा है । इसका कोई अभिभावक नहीं, कोई रक्षक नही ! विदेशियों ने भी इस बूढ़े देश पर दॉत गाड रक्खे हैं । पता नही, उन्हे यहॉ आकर क्या मिलता है ! (कुछ सोचकर और गहरी सॉस लेकर) ठीक, कुलागार राजपूतों की रमणियाँ उनके लिए एक महान आकर्षण बनी हुई है । देश-द्रोही कायर राजपूत राजाओं ने अपनी बेटियाँ

दे देकर उनका हौंसला बढ़ा रक्खा है! हाय! राजपूत जाति! तुझे क्या हो गया? तू अपने उस उच्च गौरव को कहाँ खो बैठी? (फिर कुछ सोचकर) किंतु, मुझे संपूर्ण राजपूत जाति पर लाछन लगाने का अधिकार ही क्या है! मेरे पिता—नही, नहीं—उदयपुर के राणा—मेवाड़ के सिरताज—राजपूतों के राजा स्वयं विलासी और अधर्मशील हैं! उन्होंने भी छोटी रानी के प्रेम-बंधन मे पड़कर, प्रजा की इच्छा के विरुद्ध, जगमल को राज-सिहासन पर आरूढ़ किया है! ओह! प्यारे देश! तेरा दुर्भाग्य है! मेरे मन की साध मेरे मन मे ही रह गई!

(सहसा चूड़ावत कृष्णसिह का प्रवेश)

कृष्ण—(अभिवादनपूर्वक) राजकुमार! आज आप चिंतित-से अकेले क्यों घूम रहे हैं? आज आप किस समस्या को सुलझाने में लगे है?

प्रताप—कृष्ण जी! आज बहुत सबेरे आँख खुल गई। यों ही मन बहलाने के लिए उपवन में चला आया हूँ। आप क्या पूछते हैं, कृष्ण जी!—किस समस्या को सुलझाने मे लगा हूँ? अभागे भारत की गुलामी की समस्या के सिवाय और कौन-सी समस्या इस समय किसी क्षत्रिय को चिंता-लीन कर सकती है?

कृष्ण—ठीक है, राजकुमार! ठीक है। मैं पहले से ही आपके स्वभाव को पहचानता हूँ। आज मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि स्वदेश की बलि-वेदी पर प्राण निछावर करने वाले वीर अवश्य जननी जन्म-भूमि का मुख उज्ज्वल करेंगे और आप उनके अग्रणी बनेंगे।

प्रताप—किंतु, कृष्ण जी! मुझे तो लोक-सेवा के सौभाग्य से पिता जी वंचित ही रखना चाहते हैं, न?

कृष्ण—उनका यह सरासर अन्याय है कि उन्होंने, बड़े और योग्य राजकुमार को सिंहासन न देकर, मोहवश छोटे राजकुमार को सिंहासनासीन किया है। प्रजा उनके इस कृत्य की हजारों मुँह से निंदा कर रही है।

प्रताप—अच्छा, इस बात को छोड़िए, और कोई बात हो तो कहिएगा।

कृष्ण—राजकुमार! आपको इन बातों में उदासीन नहीं रहना चाहिए। हम आपको सिंहासन पर आरूढ़ करके छोड़ेंगे। आपको इसके लिए तैयार रहना चाहिए।

प्रताप—नहीं, वीर सरदार! ऐसा मत कहो। देखो, श्री राम ने बिना किसी तर्क-वितर्क के पिता की आज्ञा से अयोध्या के विशाल साम्राज्य को लात मार कर चौदह साल के वन-वास को सहर्ष स्वीकार किया था। मैं भी सूर्य-वंश पर पिता की आज्ञा के उल्लंघन का कलंक नहीं लगाना चाहता। मेरा भी यही निश्चय है कि मैं इस जीवन को वन-पर्वतों में ही घूम फिर कर बिताऊँ।

कृष्ण—(दुखी-सा होकर) राजकुमार! आज आप कैसी बातें कर रहे हैं? आप तो अपने बाल्य-काल में अनेक बार मेवाड़ के उद्धार की दुहाई दे चुके हैं! अब अवसर आने पर उससे क्यों जी चुराना चाहते हैं?

प्रताप—कृष्ण जी! 'प्रताप जी चुराए!' 'सूर्य और पश्चिम से उगे'—यह क्योंकर हो सकता है? किंतु पिता जी की इच्छा के आगे सिर झुकाना ही चाहिए।

कृष्ण—कदापि नहीं, राजकुमार! पिता की अन्याय-युक्त बात को कभी न मानना चाहिए। जिस बात से देश को हानि होने की

संभावना हो, उसे बिना सोचे-समझे ठुकरा देना चाहिए, फिर चाहे उसका कहने वाला कोई भी क्यों न हो।

प्रताप—परंतु—'बड़ों की आज्ञा अविचारणीय होती है'—इसका क्या समाधान है ?

कृष्ण—राजकुमार ! सच पूछिए तो मै उस आदमी को बड़ा ही नही मानता, जो बड़ों के अनुकूल आचरण नहीं करता। बड़े राजकुमार के रहते, किसी कामिनी के प्रेम-पाश मे बँधकर, छोटे को राजगद्दी देना, यह कहाँ का बड़प्पन है ? यह कहाँ का न्याय है ? और फिर आपके पिता जी ने आपको कोई आज्ञा भी तो नही दी। फिर उसके भंग-अभंग का प्रश्न कैसा ?

प्रताप—उनकी इच्छा मे ही मुझे आज्ञा का आभास मिलता है।

कृष्ण—इस आदर्शवाद को जाने दो, राजकुमार ! इस प्रकार का आदर्श देश-जाति के लिए अत्यंत भयावह सिद्ध होगा।

प्रताप—अच्छा, आपका कहना ही सही, कृष्ण जी ! किंतु अपने छोटे भाई को राज्य से गिराकर मै राज्य पाना नहीं चाहता। मैं इस लोक-वाद को सहन न कर सकूँगा।

कृष्ण—इस बात से आप निश्चित रहिएगा, राजकुमार ! प्रजा आपके साथ होगी। आपको कोई भी किसी प्रकार का दोष न देगा। आप अपने साधु स्वभाव के कारण ही ऐसी बातें कह रहे है।

प्रताप—फिर भी, मेरा मन, न जाने क्यों, इस प्रकार के राज्य को प्राप्त करने का इच्छुक नही है।

कृष्ण—राजकुमार ! आप भूलते है, प्रजा की इच्छा ही राजा की इच्छा होती है, राजा की अपनी इच्छा कोई नही होती।

प्रताप—पर मैं तो अभी तक राजा ही नहीं बना।

कृष्णा—राजकुमार! सिंहासनारूढ न होने पर भी आप ही राजा हैं। प्रजा आपसे प्रसन्न है। प्रजा-रंजक ही तो राजा होता है।

प्रताप—आप मुझे अधिक बाध्य न करें, कृष्णा जी! परिस्थिति कुछ ऐसी है, जिससे मुझे आशंका है कि मेरे राज्यारूढ़ हो जाने पर राज्य को अनेक विभीषणों का सामना करना पड़ेगा।

कृष्णा—राजकुमार! असंख्य विभीषणों की घटा क्यों न छा जाय, वह आपके प्रबल प्रताप के आगे कभी न ठहर सकेगी। और विभीषणों का भी भय अधर्मी के लिए हो सकता है। न्याय, सत्य, धर्म को विभीषणों की घटा कभी भी अभिभूत न कर सकेगी।

प्रताप—कृष्णा जी! भय-वय कुछ नहीं। आततायी विदेशियों के उमड़ते हुए प्रवाह को हम सुदृढ बाँध बनकर रोकेंगे और उनके विशाल सैन्य-दल को शस्त्रास्त्रों की भीषण ज्वालाओं में भस्मीभूत कर डालेंगे।

कृष्णा—हमें पूर्ण आशा है, राजकुमार! आप इससे भी अधिक करेंगे, और मातृभूमि के मलावृत मुख को अपने प्रताप के गंगाजल से स्वच्छ करेंगे। पापी आपके रौद्र रूप से थर्रा जाएँगे और आगे से सदा के लिए अपनी कुत्सित प्रवृत्तियों को अपने में मर्यादित रक्खेंगे। पर यह सब तभी होगा, जब हम सब आपको राजगद्दी पर बैठाकर—अपना एकमात्र प्रतिनिधि चुनकर—देश की बलिवेदी पर मर मिटने का प्रण करें और अत्याचारी विधर्मियों को उनके अत्याचार का ऐसा दंड दें कि वे फिर इस ओर मुँह उठा कर भी न देख सकें।

प्रताप—कृष्णा जी! केवल आप ही की यह इच्छा है या अन्य सरदारगण भी यही चाहते हैं?

कृष्ण—राजकुमार ! केवल मैं ही नहीं, समस्त सरदार आपको जल्दी से जल्दी सिहासनासीन देखना चाहते हैं। अब आप देर न कीजिए। विलासी जगमल से भी मैंने कह दिया था कि—'इस राज्य के अधिकारी आपके बड़े भाई हैं। उनके लिए, न्याय के नाम पर और उनके गुणों पर मुग्ध प्रजा की इच्छा का ध्यान रखते हुए, आपको यह गद्दी खाली कर देनी चाहिए।' इस पर विचार करने के लिए मैंने उसे तीन-चार दिन की अवधि दी थी। पर, ऐसा प्रतीत होता है, वह गद्दी छोडने के लिए तैयार नहीं है। इसी लिए उसने अभी तक कुछ उत्तर नहीं दिया है।

(गुप्तचर का प्रवेश)

गुप्तचर—(दोनो को प्रणाम करने के अनंतर) मंत्री जी ! पापी जगमल और सागरसिह आदि मिलकर बड़े राजकुमार के विरुद्ध एक भयंकर षड्यंत्र रच रहे हैं। अब अधिक विलंब न कीजिए।

कृष्ण—देखा, राजकुमार ! आप जिनका इतना खयाल करते हैं, वे आपके जानी दुश्मन बने हैं।

प्रताप—(गुप्तचर की ओर देखकर) क्यों, गुप्तचर ! क्या यह सब ठीक है ?

गुप्तचर—जी हाँ, राजकुमार ! यह बिलकुल ठीक है। अब बातचीत मे जितना समय लगेगा, उतनी ही देर होगी। मैंने, शिकार के बहाने निकले हुए उन्हें, एकांत वन मे, एक लतावेष्टित वृक्ष की ओट में छिपकर बातचीत करते सुना है।

प्रताप—अच्छा, कृष्ण जी ! आपकी बाते युक्ति-युक्त थी। मैं अनुचित उदारता के फंदे मे फँसा था। अब मेरी आँखें खुल गईं।

राजनीति के संपूर्ण रहस्यों को, अब मैं, अपने सामने, शून्य मे अंकित हुआ पढ़ रहा हूँ।

कृष्ण—(स्वगत) समस्त सरदारों को मैं शीघ्र ही राजकुमार के समीप पहुँचने के लिए कह आया था। पता नहीं, क्या बात है, अभी तक नहीं आए!

(सहसा समस्त सरदारो का प्रवेश)

कृष्ण—(एकदम उछल कर) आइएगा, आइएगा, सरदारगण! मैने अभी आप लोगों को स्मरण किया था। अच्छा हुआ, आप लोग समय पर आ गए।

सरदारगण—(दोनों को बारी-बारी से प्रणाम करने के अनंतर चूडावत कृष्णसिह से) मंत्री जी! आपकी आज्ञा कैसे टाली जा सकती थी!

प्रताप—कहिए, सरदारगण! आप लोगों का अकस्मात् आगमन कैसे हुआ?

सरदारगण—(एक स्वर से) राजकुमार! हम आपको शीघ्र ही 'महाराज!' कहकर पुकारना चाहते हैं। हमारे, यहाँ, इस समय आने का यही एकमात्र कारण है।

प्रताप—क्या आप लोग सचमुच मुझे 'महाराज!' कहकर पुकारने के इच्छुक हैं?

सरदारगण—हाँ, राजकुमार! हम आपको सचमुच 'महाराज!' कहकर पुकारना चाहते हैं।

प्रताप—किंतु आप लोग, प्राणों के रहते, अपने महाराज कहलाने वाले सेवक की बात को तो कभी न टालेगे?

सरदारगण—कभी नहीं, राजकुमार! कभी नहीं। हम अपने

महाराज की आज्ञा पाकर जान तक लडा देने के लिए तैयार हैं और घरों से अंतिम बिदा लेकर आए है ।

प्रताप—धन्य है, सरदारगण ! आप लोगों को धन्य है । तब मैं भी आप लोगों की आज्ञा मानने के लिए विवश हूँ । (चूडावत कृष्ण से) क्यों, कृष्ण जी ! अब तो आपकी इच्छा पूर्ण हो गई ?

कृष्ण—क्यों नहीं, मेवाड के हृदय-सम्राट् ! आज मेरे उत्तप्त हृदय को शाति मिली है । दुविधा की भँवर मे पड़े हुए को दिव्य सहारा मिल गया है । आज देश के भाग्य, आनंद की अँगड़ाई लेते हुए, जाग उठे हैं । भारत-माता के दुखी एवं प्रशात वदन पर मृदु मुसकान की एक लहर दौड़ गई है । आज पृथिवी, सलिल, अनल, अनिल, गगनतल—सब मे मुझे आश्वासन की पवित्र आभा दृष्टि-गोचर हो रही है । ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ये सब हमारे पक्ष मे खड़े हैं । (सरदारो से) सरदारगण ! सौभाग्य से, आप लोगों ने हमारे हृदय-सम्राट् 'राजकुमार' को 'महाराज' की पदवी पर अधिष्ठित होने को विवश कर दिया है । आओ, अब हम सब मिलकर उन्हे क्रम से 'महाराज !' कहकर प्रणाम करें ।

(पहले चूडावत कृष्णसिह और उनके बाद मे अन्य
सरदारगण क्रम से यथाविधि प्रताप को
'महाराज !' कहकर प्रणाम करते है)

कृष्ण—आइए, महाराज ! अब शीघ्र ही चलकर प्रजा के संमुख राज्याभिषेक का कृत्य संपन्न करें ।

(सब का राणा प्रताप को आगे करके जय जयकार करते हुए प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

स्थान—चित्तौड़ के राजमार्ग का चतुष्पथ

समय—मध्याह्नोत्तर

(कुछ नगरवासी खजूर की छाया मे संगमरमर की पटिया पर बैठे परस्पर वार्तालाप कर रहे है)

पहला—यवनों के भी अत्याचारों की हद हो गई ! कितनी बर्बरता फैली हुई है । नीच यवन, घरों मे आग लगा, मनुष्यों के झुंड के झुंड होम कर देते हैं । हाय ! इन नर-पशुओं को परमात्मा ने दिल दिया कि नही !

दूसरा—ऐसा विप्लव तो हमने कभी नहीं देखा ! अराजकता भी अपनी चरम सीमा को पहुँच गई है !

तीसरा—अजी ! नर-हत्या, विप्लव, अराजकता तो एक ओर रहने दो, उन पाजियों ने तो अति जघन्य नारकीय अत्याचारों पर कमर कसी है ! मनुष्यता को सर्वथा तिलांजलि दे डाली है ! ओह ! वीर राजपूतों की रमणियों की दुर्दशा का ध्यान आते ही आँखों मे खून उतर आता है, रोम-रोम काँपने लगता है !

चौथा—बस, रहने दो इस पाप-कथा को । राक्षसों के राज्य मे ऐसी ही दुर्घटनाएँ घटा करती है ।

पाँचवाँ—किंतु, चित्तौड़ के राजा सागरसिंह तो राजपूत ही है न ? फिर हिंदू-बालाओं पर होने वाले इन अमानवीय अत्याचारों को वे कैसे सहते हैं ?

पहला—आपने भी अच्छी कही, भाई ! चित्तौड के राजा हैं तो सचमुच राजपूत, पर वे अकबर के क्रीत-दास हैं । अकबर ने

ही उन्हें चित्तौड़ की गद्दी पर बैठाया है। फिर उसकी इच्छा के विरुद्ध वे क्या कर सकते हैं ?

पाँचवाँ—नहीं कुछ कर सकते तो राजगद्दी छोड़ दे ! दूसरे के हाथ की कठपुतली बनकर नाचने में थोड़े ही राजापन है ! जो निस्तेज है, जिसका प्रताप सूर्य के समान नही दमकता, जो अपने प्रखर प्रताप से पापांधकार को दूर नहीं कर सकता, उसे राजा बनने का क्या अधिकार है ?

दूसरा—भाई !-अधिकार हो, या न हो, यह कौन देखता है। जिसकी एक बार बन आई, वह अपनी करनी मे कसर नही छोड़ता। उसे तो अपनी इच्छाओं के पूर्ण होने से प्रयोजन। अपने आराम से काम। फिर चाहे, कोई मरे या जिए।

तीसरा—फिर भी भले आदमी को अपने सजातीयों का तो कुछ ध्यान अवश्य रखना चाहिए। दुख-दर्द मे उनकी सहायता न सही, तो कम से कम उन पर अत्याचार तो न होने दे ! आख़िर है तो हिंदू ही।

चौथा—हिंदू हो, या मुसलमान । राजा के लिए तो सब एक समान हैं। और फिर मैं तो उसे हिंदू ही नही समझता, जो अत्याचार के आगे गरदन झुका दे, पाप के आगे गिड़गिड़ाने लगे और अन्याय का साथ दे।

पाँचवाँ—भाई ! तुम बिलकुल ठीक कहते हो । मैं तुम्हारी बातों से सहमत हूँ।

पहला—ऐसा कौन पशु है, जो इन बातों से सहमत न हो। परंतु इन विदेशियों के अत्याचार तो अब इतने असह्य हो गए हैं कि कुछ कहा नहीं जाता।

सब—कहो, कहो, भाई ! कहते क्यों नहीं ?

पहला—बस कुछ न पूछो। कल रात की बात है कि कुछ नीच विधर्मी प्रेमसिंह की अनुपस्थिति मे उसके घर मे घुस गए। उन्होंने बिना कुछ पूछे-ताछे ही उसके बच्चों को मार डाला और फिर उसकी गर्भिणी स्त्री को भी, उसकी अनिच्छा और उसे आत्मरक्षा के लिए तत्पर देखकर, गोली का निशाना बना दिया।

सब—(करुण स्वर मे) कम्बख़्त कहीं के ! बच्चों और औरतों पर भी रहम नही करते !

पाँचवाँ—आख़िर ये पापी चाहते क्या हैं ?

पहला—चाहते हैं, डले पत्थर ! इन लोगों का सिद्धांत है—हिंसा, एकमात्र हिंसा ! धर्म के नाम पर भयंकर नर-मेध ! और सब से बढकर अपनी कुत्सित वासनाओं को तृप्त करना ! (उत्तेजित होकर) मालूम पडता है, अभी इन्हे किसी बिगड़े दिल के राजपूत से पाला नही पड़ा है ! नही तो बच्चू सब अत्याचार-वत्याचार भूल जाते !

तीसरा—सुना तो है कि महाराणा प्रतापसिंह ने मेवाड़ का शासन-सूत्र सँभालते ही इन लोगों से लोहा लेने की ठानी है। और उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि—'जब तक हम चित्तौड़ को शत्रु के पंजे से न छुड़ा लेंगे और मुगलों के अत्याचारों से प्रपीड़ित प्रजा के दुःखों को दूर न कर देंगे, तब तक सब आमोद-प्रमोद बंद रहेंगे। भोग-विलास की सब सामग्री को विष के तुल्य समझा जाएगा। सोने-चाँदी के बरतनों को फोड़ देंगे और पत्तों पर ही भोजन करेंगे। सुंदर रेशमी वस्त्रों के स्थान मे मोटे कपड़े पहनेंगे। कोमल सेज को तिलांजलि दे दी जाएगी और शिलाओं पर पत्तों के बिछौनों पर सोएँगे। और स्वादिष्ट षड्रस भोजन के स्थान मे केवल कंद-मूल ही ग्रहण करेंगे।'

पाँचवाँ—(गद्गद होकर) राणा ! आप धन्य है ! ईश्वर आपकी इस भीष्म-प्रतिज्ञा को पूर्ण करे, यही प्रार्थना है।

चौथा—भाई ! पाप का घड़ा अवश्य फूटेगा।

पहला—बिलकुल ठीक है। अत्याचारी को कभी-न-कभी अत्याचारों का फल भुगतना ही पड़ता है।

दूसरा—भाई ! बात तो आप ठीक कहते है ! पर अब इन अत्याचारों से बचने का क्या उपाय हो सकता है ! खाली इन बातों से थोड़े ही काम चलता है कि सोच लिया—अत्याचारी को दंड अवश्य मिलेगा ! मिलेगा कहाँ से ?—क्या परमात्मा हाथ मे डंडा लेकर आएगा ? और यदि यह कहो कि अकेले राणा प्रताप ही, ईश्वर की प्रेरणा से पापियों को दंड देंगे, तो यह असंभव है, सरासर झूठ है, ऐसा कभी हो नही सकता कि अकेला आदमी, चाहे वह कितना ही भीम-काय और कितना ही बलशाली क्यों न हो, एक सुसंगठित विशाल साम्राज्य को अन्याय से रोक दे और उसका एकदम दमन कर डाले ! इसलिए हम सब देशवासियों को मिलकर इसके लिए यत्न करना चाहिए और कोई-न-कोई ऐसा मार्ग ढूँढ निकालना चाहिए, जिससे कि हम अन्यायी को नाकों चने चबा दें और उसे यह सिद्ध कर दिखाएँ कि यह कंकाल अभी सर्वथा निर्जीव नहीं हुआ है, इसकी हड्डियों मे अब भी कुछ जादू काम कर रहा है, जिसको बाप्पा रावल और कुंभा आदि वीरों की भीषण हुंकार, (अरावली पर्वत-श्रेणी की ओर इशारा करके) इन पर्वतों मे गूँजती हुई, समय समय पर जागृत करती रहती है।

तीसरा—भाई ! मुझ से पूछो, तो मेरी तो यही राय है कि अपने बल पर खड़े होकर युद्ध करने के अतिरिक्त अन्याय के शिकंजे से बचने का कोई उपाय नही। और हमारा कर्तव्य है कि

हम सब देश की आज़ादी के नाम पर एक झंडे-तले इकट्ठे हो जायँ, और राणा प्रताप को अपना एकमात्र नेता समझें । उनकी आज्ञा से हमें जल मे, थल मे, आकाश मे, पाताल मे और भीषण वन पर्वतों मे जहाँ कही भी जाना पड़े जायँ और शत्रु से लोहा लें। तभी हमारा उद्धार हो सकता है। अन्यथा यही—कायरों की तरह रोना—रहेगा ही।

पहला—परंतु यवनों की विशाल सेना और भयंकर तोपों के आगे इने-गिने मुट्ठी भर वीर भी क्या कर सकेंगे, यह तो बताओ? बाते बनानी सरल हैं, करना कठिन है।

दूसरा—इन बातों को कायर सोचा करते हैं । हमे एकमात्र देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए । इस कर्तव्य पालन के पवित्र कार्य मे हमे कितने ही भयंकर से भयंकर कष्ट झेलने पड़ें, झेलने चाहिएँ, किंतु जननी जन्म-भूमि को कभी भी दूसरों से पद-दलित होते हुए न देखना चाहिए । ऐसा करना कायरता है, महान अधर्म है, राजपूती शान पर अमिट दाग है । यदि ऐसी बात है, हम लोग अपने पैरों नही खड़े हो सकते और अपने कर्तव्य को नही पहचानते, तो सर्वनाश निकट है। उसके लिए हमे तैयार रहना चाहिए।

तीसरा—अच्छा, यदि आप लोगों का ऐसा ही विचार है, तो एक काम करें। हमें महाराज सागरसिंह से भी मिल लेना चाहिए और उनसे साफ़ साफ़ कह देना चाहिए कि—कृपया आप यवनों के इन अमानुषिक अत्याचारों को रोकने का यत्न करें । अन्यथा हम इनका उपाय स्वयं सोचेंगे । और यदि हमने आवश्यक समझा, तो हम अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए राणा प्रताप को अपना नेता समझ उनके झंडे-तले एकत्रित हो जायँगे।

पहला—आपकी बात है तो ठीक । बिना मतलब ही क्यों किसी से बिगाड़ी जाय ! यदि महाराज सागरसिंह ही हमारे दुःखों को दूर कर सकें, तो इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है ! बुद्धिमत्ता तो इसी मे है—साँप भी मर जाय, लाठी भी न टूटे । अत्याचारों से भी बच जायँ और राजा से भी न बिगड़े ।

चौथा—वैसे तो आप दूरदर्शी हैं। मगर हमे तो राजा सागरसिंह से कुछ आशा है नही । उन्हें नर्तकियों से ही फुरसत नही । दिन-रात अपने आमोद-प्रमोद मे लगे रहते हैं । कोई यदि अपना खास काम लेकर उनसे मिलने की इच्छा प्रकट करता है, तो सदा 'ना' मे ही उत्तर मिलता है। भला यह बात न होती, तो उन्हें कहता ही कौन ? और फिर यवन इतने अत्याचार ही कैसे कर सकते थे ? नही तो, उनका एकदम मुँह मसल दिया जाता, उन्हे फॉसी पर लटका दिया जाता ! दुःख तो यही है कि ज़माना इतना ख़राब आ गया है कि अपने ही अपने नही रहे, वे ही जड़ काटने पर तुले हुए हैं !

दूसरा—बिलकुल ठीक । लोग कहते है, भयंकर कलियुग आ गया । इसी से यह पाप-चक्र चला हुआ है और संसार दुःख भोग रहा है । पर यह बिलकुल झूठ है, सरासर झूठ है, एकदम मिथ्या है । बात दर-असल यह है कि काल-परिवर्तनशील है, और इस परिवर्तन का कारण एकमात्र राजा होता है । जिस समय का राजा दुराचारी है, वह समय दुराचार का समय कहलाने लगता है; क्योंकि राजा को देखकर प्रजा मे भी दुराचार की मात्रा बढ़ जाती है । और इसी प्रकार जिस समय का राजा सदाचारी होता है, वह समय सदाचार के समय के नाम से पुकारा जाने लगता है, क्योंकि राजा की देखा-देखी प्रजा मे भी सदाचार का विस्तार हो जाता है ।

तीसरा—अच्छा भाई ! अब हमे बातचीत बंद कर देनी चाहिए। संभव है, कोई राजपुरुष अचानक यहाँ को आ निकले। हमे हर एक बात विचारपूर्वक और शांत होकर करनी चाहिए। मनुष्य इस से धोखा नहीं खाता और समय पर अपने कार्य मे सफल होता है।

पाँचवाँ—हाँ भाई ! चलो, अब हमे यहाँ से चलना चाहिए, और शीघ्र ही जाकर महाराज सागरसिंह से मिलने की आज्ञा ग्रहण करनी चाहिए। अगर नही भी मिले, तो इसमे उनकी कलई तो खुल जायगी।

सब—आओ, चले।

(सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

स्थान—चित्तौड़, सागरसिंह की सभा

समय—तीसरा पहर

(सागरसिह सिहासन पर विराजमान हैं। दाहिनी ओर मंत्री बैठे हुए हैं। दोनो आपस मे बातचीत कर रहे हैं।)

सागरसिंह—देखो, मंत्री जी ! अकबर ने चित्तौड़ का राज्य देकर मुझ पर कितना अहसान किया है। दूसरी ओर प्रताप को तो देखो कि—मेरे सगे भाई जगमल को गद्दी से ही उतार दिया था, तो कम से कम, विपत्ति के समय, भाई के नाते उसकी सहायता

तो करते ! किंतु कुछ नहीं ! सिरोही के राव सुलतान ने उसे मार डाला और वे बिलकुल चुप रहे ! क्यों न हो !—राव सुलतान प्रताप के दामाद जो ठहरे ! सच पूछो तो यही एक कारण है कि मै अकबर से मिल गया हूँ। मै प्रताप से इसका बदला अवश्य लूँगा और सपरिवार उसे बंदी बनाकर छोड़ूँगा।

मंत्री—हाँ, महाराज ! अपने भाई की रक्षा न करके प्रताप ने सचमुच बुरा काम किया है।

सागरसिंह—लोग कहते है, मैने अकबर से मिलकर अच्छा नहीं किया। पर मै नही समझता, उनका ऐसा विचार क्यों है। वे लोग अविवेकी है, जो संसार की गति-विधि को नही समझते। संसार स्वार्थी है। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए सब कुछ कर सकता है। प्रताप ने अपने स्वार्थ के लिए अपने भाई को राज्य-च्युत कर दिया। मैं भी अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए यदि यवन-सम्राट् की शरण मे आ गया, तो क्या हुआ ? क्यों, मंत्री जी ! आपकी क्या राय है ?

मंत्री—आपने बहुत अच्छा किया, महाराज ! आपको यही उचित था। आपको ही प्रताप क्या दे देता ? संसार मे सब अपना अपना पेट भरते हैं। कोई देश-सेवक का ढोंग रचकर, कोई धर्म-सेवक बनकर। मेरा तो कम से कम यही अनुभव है।

सागरसिंह—मंत्री जी ! पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म सब काल्पनिक हैं। मरने पर केवल धर्म ही साथ जाता है, यह मिथ्या-जल्पना नहीं तो क्या है ? स्वर्ग और नरक की कल्पना भी कोरा भ्रम ही है। और यदि स्वर्ग और नरक को मान भी लिया जाय, तो मेरे विचार मे इस देह मे भोग-विलास और आनंद लूटने के सिवाय स्वर्ग और कोई वस्तु नही; और इसके विपरीत नरक है।

देशजाति के नाम पर और अपनी आन पर जान देने वाले युवक पागल हैं। भला इससे उन्हे क्या मिलता है ? और मरने के बाद किसने अपनी कीर्ति को फैलते हुए देखा है ? मरने के पीछे कुछ ही हुआ करे, मनुष्य को उससे मतलब ? संसार कितना अविचारशील है !

मंत्री—महाराज ! आपका कथन सर्वथा युक्ति-युक्त है। प्रताप कितना मूर्ख है ! शत्रुता भी बराबर वाले से करनी चाहिए। महाबलशाली अकबर से बिगाड़ कर उसे क्या मिलेगा ? सुना है, उसने गद्दी पर बैठते ही यवन-सम्राट् से लोहा लेने की ठानी है। और चित्तौड़ को फिर से प्राप्त करने का प्रण किया है। महाराज ! जैसे भी बन पड़े, आपको प्रताप के दमन के लिए तैयार रहना चाहिए। छोटे भी शत्रु को बड़ा समझना चाहिए तथा रोग और वैरी को उत्पन्न होते ही दबा देना चाहिए—यही नीति है । स्वर्ग-नरक, धर्म-अधर्म और पाप-पुण्य यह सब कोरी कल्पना है, भ्रांत धारणा है।

सागरसिंह—मंत्री जी ! आपके इन वचनों से मेरा रहा-सहा संदेह जाता रहा। मेरे विचार और दृढ़ हो गए । अब मै शीघ्र ही सम्राट् अकबर से सलाह करके प्रताप को बंदी बनाकर अपने मार्ग को निष्कंटक करूँगा, और इस प्रकार समस्त मेवाड़ का एकाधिपति बनूँगा।

मंत्री—यदि भाग्य ने ज़ोर मारा तो ऐसा भी हो सकता है, महाराज ! किंतु हम हिंदुओं को थोड़े ही मे संतुष्ट रहना चाहिए। अपनी इच्छाओं को अधिक न बढ़ाना चाहिए । नहीं तो, आगे जाकर कठिनता का सामना करना पड़ता है, और कभी-कभी तो प्राप्त वस्तु से भी हाथ धोना पड़ता है। इसलिए सुरक्षित मार्ग यही

है कि जो भी मिल जाय, उसी मे संतुष्ट रहो। महाराज ! समस्त मेवाड़ के प्रभु बनने का स्वप्न छोड़ दीजिए । कही किसी भेदिये से अकबर को आपके इस विचार का पता चल गया, तो लेने के देने पड़ जायँगे। अकबर हिंदुओं को जो कुछ देता है, बहुत तोलकर देता है। इसलिए अधिक की इच्छा न कीजिए; कहीं चित्तौड़ भी न हाथ से जाता रहे !

सागरसिंह—(कॉपता हुआ) अच्छा, अच्छा, मंत्री जी ! आपने बड़ी अच्छी बात सुनाई। मेरा मन घबरा रहा है । देखो, मंत्री जी ! (दोनों हाथ जोड़ता हुआ) मै आपके आगे हाथ जोड़ता हूँ, सम्राट् अकबर से यह मत कह देना।

मंत्री—महाराज ! आप इस तरह क्यों मुझे लज्जित कर रहे हैं ? मैंने तो एक बहुत साधारण बात कही थी। उसका मतलब, आशा है, आप समझ ही गए है । इसमे घबराने की कोई बात नहीं।

(राजा फिर थरथर कॉपने लगता है)

मंत्री—महाराज ! यह आप क्या कर रहे हैं ? यह आपको शोभा नहीं देता। एक क्षत्रिय को इतनी भीरुता नहीं सुहाती। (स्वगत) डरे क्यों नहीं ! हिम्मत कहाँ से लाए ! है तो आखिर विलासिनी का पुत्र ही ! प्रताप सचमुच प्रतापी है । वह वीर क्षत्राणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। और उदयसिह भी उस समय विलासी नहीं थे।

सागरसिंह—मंत्री जी ! चुप क्यों हो गए ? आप क्या सोचने लगे ? मेरा चित्त घबरा रहा है। कुछ दिल बहलाने का ही सामान कीजिए। अच्छा, और कुछ नहीं तो नर्तकियों को बुलवाइए। अथवा मैं खुद बुलवाए लेता हूँ। कौन है यहाँ ?

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(प्रणामपूर्वक) क्या आज्ञा है, महाराज !

सागरसिंह—जाओ, नर्तकियों को एकदम बुला लाओ ।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

(कुछ सभासदों का प्रवेश । सब प्रणामपूर्वक यथास्थान बैठ जाते है)

सागरसिंह—मंत्री जी ! बहुत दिन हो गए, हमने कुछ सुंदरियाँ सम्राट् अकबर और शाहजादा सलीम के पास भेजी थीं । उनके विषय मे कुछ समाचार नही मिला ।

(यवन-सेनापति मुनीमखाँ का प्रवेश)

सागरसिंह—(सिहासन से उठता हुआ) आइएगा, सिपह-सालार साहब ! कहिएगा, शाहंशाह साहब और शाहजादा साहब का क्या हाल है ?

मुनीमखाँ—(सलाम करके हाथ मिलाते हुए) राजा साहब ! वे दोनों आपसे बहुत खुश हैं। आपकी भेजी हुई सुंदरियों को पाकर वे फूले नही समाते ।

(सहसा सात नर्तकियो का मंडलाकार गति से नाचते हुए प्रवेश)

सागरसिंह—सिपहसालार साहब ! आप भी भाग्य के धनी है। कैसे ठीक समय पर आए हैं !

मुनीमखाँ—(नर्तकियो की ओर ध्यानपूर्वक देखकर) राजा साहब ! ये तो सीधी आपकी ही ओर चली आ रही हैं ।

(नर्तकियाँ राजा के समीप पहुँच कर राजा को प्रणाम करती है और फिर मंडलाकार गति से लौटती हुई राजसभा के मध्यभाग में यथास्थान बैठ जाती हैं)

सागरसिंह—मेरी परियो ! आज तो आप लोगों के बीच मे विराजमान कामसेना नाम की मुख्य गायिका का कोकिल-कंठ सुनने को मन तड़प रहा है। वह गाए और आप लोगों का क्रम से नृत्य होगा।

(कामसेना नाम की गायिका गाना आरंभ करती है)

देखो, यह दुनिया का रंग।
स्वर्ण-लता-सी देह हमारी लखकर प्रेम-तरंग—
मृदु हिलोर लेती है मन मे उठती एक उमंग॥
एक नयन का तीर चला हम करतीं मुनि-तप-भंग।
प्राण तड़प उठते हैं जिससे शिथिलित सारे अंग॥
रूप-जाल में फँसा हुआ है जग का जीव-विहंग।
निज इच्छा से कर रक्खा यह उसने अपना ढंग॥
सकल-लोक-रंजन-हित बजता, देखो, राग-मृदंग।
खरबूजे को देख बदलता है खरबूजा रंग॥
मँडरा कर चहुँ ओर कमल के क्यों अलि! करता तंग?
रूप-दीप का यदि लोभी, तो जलना यथा पतंग॥
लंबे-लंबे इन अलकों में उलझा चित्त-कुरंग।
कौन छुड़ा सकता है उसको तजकर प्रेमासंग?॥
शक्तिहीन तू आज हुआ है, तज सकता क्या संग?
अबला कहने वाले ! तेरा अबल हुआ प्रत्यंग॥
सब के हृदय-गगन में जलता, सम ही, प्रेम-पतंग।
आओ एक, अनेक, बनें, हम, यही प्रेम का ढंग॥

(कामसेना गाना समाप्त कर देती है और अपने स्थान पर
बैठ जाती है। सागरसिंह की गरदन अब भी घूम रही है।
नृत्य आरंभ हो चुका है। सहसा कुछ
नागरिकों का प्रवेश।)

पहला—(एक ओर को) नाच-रंग मे सब इतने लीन हैं कि किसी को इस बात की सुध ही नहीं कि राजसभा में कौन आ रहा है और कौन जा रहा है।

दूसरा—और तो और, इन बूढ़े सभासदों की दाढ़ियाँ भी तो हिल रही हैं।

तीसरा—भाई! इन बेचारों को क्यों दोष देते हो? तन से ही अगर बूढ़े हो गए है, तो मन से तो नहीं हुए। जब राजा साहब की ही गरदन इस तरह हिल रही है—मानों—किसी ने चाबी भरकर छोड़ दी हो, तो साधारण लोगों की तो बात ही क्या है?

चौथा—मैंने तो भाई! पहले ही कहा था कि राजा सागरसिंह को तो नर्तकियों से ही फुरसत नहीं, वे प्रजा के दुख-दर्द की करुण कहानी कब सुनने लगे! आओ, चले। अब तो राणा प्रताप ही हमारे राणा हैं। हमे चाहिए कि हम हजारों अपने साथी बनाएँ और सब को साथ लेकर अपने राणा की शरण मे पहुँच जायँ। इसीमे हमारा कल्याण है।

पाँचवाँ—मेरी भी यही राय है। अब हमे अधिक देर नहीं करनी चाहिए।

(सब नागरिकों का प्रस्थान)

मुनीमखाँ—राजा साहब! आप तो इतने मस्त हुए कि आपको गाना बंद होने की भी सुध नहीं रही।

सागरसिंह—सिपहसालार साहब ! सुंदरी ही तो संसार का एकमात्र सार है ! संसार का सारा मिठास इस एक सुंदरी के कंठ मे इकट्ठा हो गया है।

मंत्री—महाराज ! अपनी प्रतिज्ञा को याद कीजिएगा।

सागरसिंह—कौन सी ?

मंत्री—यही कि प्रताप को सपरिवार बंदी बनाकर छोड़ूँगा।

सागरसिंह—हाँ, मंत्री जी ! आपने अच्छी याद दिलाई। अच्छा, सभा को विर्सर्जित करने की आज्ञा दे दीजिए। और नर्तकियों को यथेच्छ वस्त्राभूषणादि देने के लिए कोषाध्यक्ष जी से कह दीजिए।

(मंत्री राजाज्ञा सुनाकर सभा को विसर्जित करता है, और कोषाध्यक्ष से कहकर नर्तकियो को यथेच्छ वस्त्रालंकारादि दिलाकर उन्हें बिदा देता है। नर्तकियाँ मंडलाकार गति से नाचती हुई चली जाती है)

मुनीमखाँ—अच्छा, राजा साहब ! अब जाने की इज़ाज़त दीजिए।

सागरसिंह—हाँ, सिपहसालार साहब ! अब आप जा सकते हैं। कृपया सम्राट् अकबर से हमारी ओर से कह दीजिए कि हम प्रताप को बंदी बनाने के लिए भरसक यत्न कर रहे हैं। आप निश्चिन्त रहें।

मुनीमखाँ—(उठकर हाथ मिलाता हुआ) अच्छा बिदा, राजा साहब !

(मुनीमखाँ का प्रस्थान)

सागरसिंह—देखा, मंत्री जी! मुनीमखाँ कैसा अच्छा आदमी है!—कितना हँसमुख, कितना सुडौल और कैसा मिलनसार! यह हमारा अंतरंग मित्र है।

मंत्री—हाँ, महाराज! यह तो मैं आप दोनों की बात से ही ताड़ गया था कि मुनीमखाँ आपके प्रगाढ़ मित्रों मे से है। (स्वगत) 'मूर्ख छंदानुरोधेन'। (प्रकट) सचमुच बड़ा सुंदर युवक है।

सागरसिंह—हमारे घर यह प्रायः आता-जाता रहता है। मेरा इस पर पूर्ण विश्वास है। अन्य यवन-युवकों में और इसमे बहुत अंतर है।

मंत्री—(स्वगत) मूर्ख साँप के बच्चे को अंतरंग मित्र समझ रहा है। कभी अवसर पाकर ऐसा डंक मारेगा कि छटपटाता रह जायगा। (प्रकट) महाराज! अंतरंग मित्र भी ऐसा ही होना चाहिए।

सागरसिंह—अच्छा, मंत्री जी! अब चलना चाहिए, आज काफ़ी देर हो गई।

(दोनों का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

चौथा दृश्य

स्थान—उदय-सागर का तट, पर्णकुटी

समय—प्रभात

(प्रताप, पर्णकुटी के बाहर, रानी पद्मावती और पुत्र-पुत्रियों सहित एक विशाल शिलाखंड पर बैठे हुए है और वे परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं)

पद्मावती—मेरे देव! क्या मैं आपसे पूछ सकती हूँ कि आपने उदयपुर के राजमहलों को छोड़कर इतनी दूर उदयसागर के

तट पर पर्णकुटी में क्यों वास किया है, और समस्त मेवाड़ को जन-शून्य एवं उजाड़ बना देने मे आपने कौन-सा लाभ सोचा है ?

प्रताप—क्यों नहीं, देवी ! तुम मेरी अर्द्धांगिनी हो। तुम्हारा और मेरा पद एक समान है, मेरा तुम पर पूर्ण विश्वास है। तुम सुख-दुःख मे सदा मेरी सहचरी रहोगी और भयंकर से भयंकर विपत्ति-काल मे भी मेरे साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर चलोगी। फिर मैं इस उदयसागर के तट पर बसने और संपूर्ण मेवाड़ को उजाड़ बना देने के रहस्य से तुम्हें कैसे वंचित रख सकता हूँ। आशा है, ध्यान से सुनोगी।

पद्मावती—हाँ, देव ! कहिएगा, मैं सावधान हूँ।

प्रताप—सुनो, देवी ! यह तो तुम जानती ही हो कि एक छोटे से राज्य के लिए बादशाह अकबर की महान सेना के साथ लड़ना कोई हँसी-खेल नहीं है। कहाँ अकबर की शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित असंख्य सेना और कहाँ सगे-संबंधियों तक की सहायता से रहित मेवाड़ के अल्प-संख्यक वीर। इसी लिए आरंभ में ही मैंने यह घोषणा करवा दी कि मेवाड़ की समस्त प्रजा को चाहिए कि वह ग्राम-नगरों को छोड़कर अरावली पर्वत को अपना निवास-स्थान बनाएँ। इससे यह होगा कि यवन लोग जब मेवाड़ पर आक्रमण करेंगे तो उन्हें सिवाय खँडहरों के और कुछ न मिलेगा और इस प्रकार रसद आदि प्राप्त करने मे उन्हे भारी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। दूसरी ओर गिरि-कंदराओं में बसकर हमारे राजपूत वीर उन पर जहाँ तहाँ अकस्मात् आक्रमण करके उन्हें विचलित कर सकेंगे और स्वयं होने वाली भारी हानि से बच सकेंगे।

पद्मावती—देव ! मैं भी यही सोचती थी। पूछने का एकमात्र कारण संदेह को दूर करना ही था।

प्रताप—अच्छा, अब बच्चों को युद्ध-विद्या सिखाने का समय हो गया। तुम चलकर इन्हे युद्ध-विद्या सिखाओ।

(बच्चों सहित रानी का प्रस्थान)

प्रताप—प्रधान मंत्री जी ने आने मे बड़ा विलंब कर दिया ! उनके साथ मिलकर भावी कार्यक्रम पर विचार करना था ! अच्छा, इतना मैं अपनी पर्णकुटी मे चलकर सोचता हूँ।

(सहसा चूड़ावत कृष्ण का प्रवेश)

प्रताप—आइए, आइए, कृष्ण जी ! मैं अभी आपको याद कर रहा था। आइए, पर्णकुटी में चले।

कृष्ण—(प्रणामपूर्वक) जो आज्ञा।

(दोनों का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—वन, सरोवर का तट

समय—मध्याह्न

(शक्तसिंह आचमन करने के अनंतर तालाब
के किनारे उत्तेजित भाव से घूमता
हुआ बड़बड़ा रहा है)

शक्तसिंह—(भयंकर ईर्ष्याग्नि मे झुलसा हुआ) प्रताप ! तुझे क्या अधिकार था मुझे राज्य से निकाल देने का ? जा, बच्चू ! कुल-पुरोहित ने बीच में पड़कर. तेरे प्राण बचा लिए ! नहीं तो

तुझे अहेरिया-उत्सव का मज़ा चखा देता ! अच्छा, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है ! मैं तेरे सारे भेद से परिचित हूँ ! मेवाड़ का प्रत्येक खंड मेरा छाना पड़ा है ! याद रख, जिसे तू अपना मेवाड़ मानता है, वह शीघ्र ही मेरी सहायता से शत्रु के हाथ आ जायगा और तेरा सारा अभिमान चूर्ण-विचूर्ण हो जायगा ! लोग मुझ से कहते हैं कि—'शक्तसिंह ! तुमने बड़े भाई का सामना करके भारी गलती की है। तुम छोटे थे, परमात्मा ने तुम्हें छोटा बनाया था, इसलिए यदि तुम शिकार के समय भी अपने को छोटा ही समझते, तो यह सूर्य-कुल मे धब्बा लगाने वाला विवाद न खड़ा होता। वन-वराह का वध तुम्हारे भाई ने किया हो या तुमने, एक ही बात है। देखो, सूर्य-वंशी लक्ष्मण श्री राम के कभी विरुद्ध नहीं गए, प्रत्युत दोनों ने मिलकर रावण-जैसे प्रबल शत्रु के साम्राज्य को मिट्टी मे मिला दिया था। यदि तुम भी अपने बड़े भाई प्रताप के अनुगामी बनकर भारत से यवनों के विशाल साम्राज्य को उखाड़ फेंको तो क्या अच्छा हो !' परंतु उनके इन विचारों और उपदेशों का मुझ पर इतना भी असर नही, जितनी कि उड़द पर सफेदी। देश-वेश मैं कुछ नहीं जानता। कोई किसी का देश नहीं है। कोई किसी की जननी जन्म-भूमि नहीं है। लोग सनकी हैं। ऐसे ही बका करते हैं—यह मेरा देश है; यह मेरी जननी जन्म-भूमि है। भला, मिट्टी का विशाल पिंड भी किसी की जननी हो सकता है ! बेवकूफ़ कहीं के ! जानें न बूझें, मियाँ ढोलकी बजावें ! भारत-माता, भारत-माता—कह कर लोगों ने नाकों दम कर रक्खा है ! रही लक्ष्मण की बात ! वह तो मूर्ख था। भला, बड़े भाई का साथ देकर उसे क्या मिल गया था ! राज्य का स्वामी तो अंत में राम ही हुआ था न ? भला आदमी, छोटे

भाई के नाते, यदि उसे लंका का भी राज्य दे देता, तो क्या बुराई थी ! आखिर था तो भाई ही ! किंतु, उसका भी मालिक विभीषण को बना बैठा ! यह है बड़े भाई का साथ देने का फल ! और देखो, महाभारत के युद्ध मे मरे-खपे भीम और अर्जुन, और राजगद्दी पर बैठे युधिष्ठिर ! क्या बड़े भाइयों के ही अधिक जान है, छोटे भाईयों के नहीं ? छोटे भाईयों को तो फाँसी दे देनी चाहिए ! वाह रे न्याय ! तू भी खूब है ! मैं अब सारी कसर निकाल लूँगा ! अभी अकबर से जाकर मेवाड़ के संपूर्ण वन-पर्वत और दुर्गम से दुर्गम स्थलों का भेद बताता हूँ और प्रताप से अपना बदला लेता हूँ ! फिर चाहे कुछ ही होता रहे !

(शक्तसिंह का धीरे धीरे वन से प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

छठा दृश्य

स्थान—उदय-सागर का तट, प्रताप की पर्णकुटी

समय—प्रभात

(प्रताप अपनी कुटिया के आगे कुछ सोचते हुए से घूम रहे हैं । सहसा एक गुप्तचर आकर प्रणाम करता है ।)

गुप्तचर—महाराज ! आज एक आवश्यक समाचार सुनाने के लिए ही मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ ।

प्रताप—कहो, क्या समाचार है ?

गुप्तचर—महाराज ! मुझे पता लगा है कि गुजरात का विद्रोह शांत करने के बाद वापस आते समय राजा मानसिंह को

यवन-सम्राट् अकबर की आज्ञा मिली है कि ईदर और डोंगरपुर के राज्य को भी हस्तगत करते आइएगा।

प्रताप—जरा ठहरो। (स्वगत) मैं अकबर की साम्राज्य-लोलुपता को खूब जानता हूँ। अब उसने तिरछी मार आरंभ कर दी है! ईदर के राजा मेरे ससुर हैं और डोंगरपुर का राजा हमारे ही वंश का है! दोनों मेरे दाएँ बाएँ हाथ हैं! अब संभव है, हमारी बारी आए! (प्रकट) अच्छा, अब आगे कहिए।

गुप्तचर—अकब्बर की आज्ञा के अनुसार राजा मानसिंह ने डोंगरपुर की मुट्ठी भर सेना को हरा डोंगरपुर के राज्य को अपने अधिकार मे कर लिया है। और अब उदयपुर की ओर ही उनका आने का विचार था। संभव है, अभी कुछ ही समय बाद वे यहाँ पहुँच जायँ।

प्रताप—(गंभीर मुख-मुद्रा धारण करके) इसके अतिरिक्त और कुछ समाचार हो तो कहो।

गुप्तचर—बस, महाराज! यही समाचार है। इसे अत्यंत आवश्यक जान अपना काम पूरा किए विना ही चला आया था। आशा है, क्षमा करेंगे। (आज्ञा पाकर प्रस्थान)

(कुमार अमरसिंह का शीघ्रतापूर्वक प्रवेश)

प्रताप—कहो, अमर! इतनी जल्दी में कैसे आए हो?

अमर—राजा मानसिंह अपनी विशाल सेना-सहित पधारे हैं। मैंने उदय-सागर के दक्षिण तट पर उनके ठहरने का प्रबंध कर दिया है। अब वे आपसे मिलना चाहते हैं।

प्रताप—(स्वगत) मुझ से मिलना चाहते हैं! मैं इस मिलने का अभिप्राय समझता हूँ! (प्रकट) अच्छा, तुम चलो। उनसे

कह दो कि मैं अभी आ रहा हूँ । फिर भोजनादि की व्यवस्था करना।

अमरसिंह—जो आज्ञा।

(अमरसिंह का प्रस्थान)

(रानी पद्मावती का प्रवेश)

पद्मावती—देव ! मैंने सुना है, गुजरात विजय करके राजा मानसिह आपसे मिलने की इच्छा से आए हैं ।

प्रताप—हाँ, देवी ! आए तो है । तुम उनके इस प्रकार यहाँ आने का क्या कारण समझती हो ?

पद्मावती—सिवाय अपनी विजय का घमंड दिखाने के और क्या कारण हो सकता है, देव !

प्रताप—देवी ! तुम ठीक कहती हो, मेरा भी यही अनुमान था। अच्छा, अब मैं उनसे शीघ्र ही मिलकर आता हूँ। हमे अपनी ओर से अतिथि-सत्कार मे कोई कसर न उठा रखनी चाहिए। मैंने अमर को उनके यथोचित सत्कारादि का भार सौंप दिया है।

पद्मावती—ठीक है, देव ! मनुष्य को चाहिए कि घर पर आए हुए शत्रु का भी यथोचित सम्मान करे।

प्रताप—अच्छा, अब मै जाता हूँ ।

पद्मावती—मै भी चलकर बच्चों के भोजनादि का प्रबंध करती हूँ ।

(प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दृश्यांतर (१)

स्थान—उदय-सागर का तट

समय—प्रभात, १० बजे

(राजा मानसिंह तंबू मे सोने की कुर्सी पर राणा प्रताप की प्रतीक्षा मे बैठे है। व्रती-वेश मे उन्नत-मस्तक प्रताप का प्रवेश)

मानसिंह—(कुर्सी से उठता हुआ) आइएगा, राणा साहब ! बड़े सौभाग्य से आज आपके दुर्लभ दर्शन हुए हैं।

प्रताप—राजा साहब ! हमारे अहोभाग्य हैं कि आप-सरीखे अतिथि ने इस भूमि को अपने आगमन से कृतकृत्य किया है।

मानसिंह—(पास मे पड़ी हुई दूसरी सोने की कुर्सी की ओर इशारा करके) राणा साहब ! विराजिएगा, खड़े-खड़े कब तक बातें होंगी !

प्रताप—नहीं, नहीं, राजा साहब ! आप अपना आसन ग्रहण कीजिए,—क्षमा करें, मैंने तो इन स्वर्णासनों पर न बैठने का व्रत धारण किया हुआ है।

मानसिंह—(कुछ खिजाया हुआ-सा) अच्छा, इसी लिए (पास ही बिछे कुशासन की ओर इशारा करके) कुमार अमरसिंह यह आसन बिछा गए थे !

प्रताप—यदि आपकी आज्ञा हो और अगर आप बुरा न मानें, तो मैं कुशासन पर बैठ सकता हूँ ?

मानसिंह—जैसा आप चाहे।

प्रताप—(स्वगत·) मानसिंह ! तुम सचमुच मानसिंह हो ! तुम एक ही स्थान पर अपने को ऊँचा और मुझे नीचा देखना

चाहते हो ! पर यह न हो सकेगा ! मैंने भी तुम्हारा मन लेने के लिए ही ऐसा किया था !

मानसिंह—राणा साहब ! आप किस चिंता मे पड़ गए ?

(अमरसिंह का प्रवेश)

अमरसिंह—(मानसिंह से) राजा साहब ! भोजन तैयार है। कृपया स्नानादि से निवृत्त हो लीजिएगा।

प्रताप—अच्छा, राजा साहब ! शेष बातें भोजन के पश्चात् होंगी। आप स्नानादि से शीघ्र ही निवृत्त होकर भोजन के लिए हमे सम्मानित करें।

मानसिंह—जैसी आपकी इच्छा, राणा साहब !

(प्रताप और अमर दोनो का प्रस्थान)

मानसिंह—(स्वगत) प्रतापसिह भी कितना विचित्र पुरुष है ! इसका सब ढंग ही निराला है ! मेवाड़ का राणा !—और यह वेश ! मालूम होता है, इसकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई है ! दुनिया भर की ऐंठ इसमे कूट-कूट कर भरी है ! भला यह अकबर की बात कब मानने लगा ! अच्छा, इस ऐंठ का फल अब इसे भुगतना ही पड़ेगा ! मैंने तो सोचा था कि यह मेरी बात मान जायगा और चुपचाप अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेगा ! पर यहाँ आकर तो और ही दृश्य देखने में आया ! इसे व्रती-वेश मे देखकर भी मुझे यह विश्वास कदापि नहीं था कि यह मेरे पास स्वर्ण-जटित आसन पर न बैठकर खड़े-खड़े ही दो बातें करके चला जायगा ! अच्छा, उसकी इच्छा ! मैं कब उसकी खुशामद करने लगा ! प्यासे को खुद ही कुए के पास जाना चाहिए ! अकबर की भौंह टेढ़ी होते ही पट्ठे की सारी ऐंठ-ऊँठ धरी रह जायगी और जंगलों मे मारा-मारा फिरेगा ! हम तो चाहते थे

कि सहज ही मे काम हो जाय, पर उसकी मूँछें ही आपे से बाहर हो रही हैं ! अच्छा, भोजन के समय रही-सही सारी बात खुल जायगी ! देखूँ, मेरे साथ बैठकर भोजन करता है या नहीं ! मैं भी आज सारा फैसला करके जाऊँगा ! मामला इधर या उधर ! या तो सीधी तरह मेरे साथ बैठकर भोजन करेगा या जिंदगी भर लोहे के चने चबाएगा ! कुछ भी सही ! जो होगा, देखा जायगा ! अब मैं जल्दी से स्नान कर लूँ ।

(प्रस्थान)

दृश्यांतर (२)

स्थान—उदय-सागर का तट

समय—मध्याह्न

(एक अति विशाल वितान तना हुआ है । मानसिंह आदि यथास्थान बैठ चुके है । सामने स्वर्ण-पात्रों मे षड्रस भोजन लगा हुआ रक्खा है । अमरसिह भोजन आरंभ करने को कहते है)

मानसिंह—(प्रताप को भोजन के समय अनुपस्थित देखकर अमरसिह से) कुमार ! क्या कारण है, राणा जी अभी तक नहीं आए ? कृपा करके उन्हें शीघ्र ही बुलवाइएगा । भोजन ठंढा हो रहा है ।

अमर—वे आते ही होंगे, आप भोजन आरंभ कीजिएगा ।

(यह सुनकर मानसिह का चेहरा लाल हो जाता है)

मानसिंह—(स्वगत) अब सारा खेल बिगड़ने वाला है! मुझे जिसकी पहले ही आशंका थी, वही हुआ चाहता है! (प्रकट) कुमार! हम राणा जी के बिना कैसे भोजन कर सकते है ? आप उन्हे शीघ्र ही बुलवा दीजिए! और मेरी ओर से उनसे कह दीजिए कि अब बीती हुई व्यर्थ की बातें जाने दे! जो हो चुका सो हो चुका! अब आगे की सुध लेनी चाहिए!

अमरसिंह—अच्छी बात है, राजा साहब! मै आपका संदेश स्वयं लेकर जाता हूँ। (अमरसिंह का प्रस्थान)

मानसिंह—(स्वगत) मैं भी देखता हूँ कि मेरे साथ बैठकर न खाने के लिए प्रतापसिंह कौन-सी युक्ति निकालता है! या तो आज मेरे साथ बैठकर खाएगा या आजीवन पछताएगा! अच्छा तो यही है कि अगर प्रतापसिंह मेरे साथ भोजन कर ले तो अन्य राजपूत-गण भी मेरे साथ भोजन करने को बाध्य हो जायँगे! और इस प्रकार मेरी मनोभिलाषा पूर्ण हो जायगी! मगर...

(मानसिंह इस प्रकार सिर नीचा किए सोच ही रहे थे कि अचानक प्रतापसिंह को अपने संमुख खड़ा हुआ देखते है)

मानसिंह—कहिए, राणा जी! आप मेरे संदेश का क्या उत्तर देते है ?

प्रताप—आप पहले भोजन कर लीजिएगा, राजा साहब! फिर संदेश का उत्तर भी आपको मिल जाएगा।

मानसिंह—(कुछ उत्तेजित होकर) मैं पहले अपने संदेश का उत्तर चाहता हूँ, राणा!

प्रताप—आप क्या कहते है, मानसिंह जी! 'जो हो चुका सो हो चुका! बीती हुई व्यर्थ की बाते जाने दो! और आगे की

सुध लो !' आप यह किस मुँह से कहते हैं ? आपके ऐसा कहने का क्या अभिप्राय है ? क्या हो चुका, कौन-सी व्यर्थ की बातें जाने दें ? और आगे को कैसी और किसकी सुध लें ? ज़रा, कृपा करके, अपने कथन को स्पष्ट तो कीजिएगा ?

मानसिंह—आप सब कुछ समझते हैं, प्रतापसिंह जी ! सोते हुए को जगाया जाता है, जागे हुए को नही !

प्रताप—यदि मै सब कुछ समझता हूँ और यदि आपकी सचमुच यही इच्छा है कि अपनी बहन-बेटियों को एक विदेशी और विधर्मी म्लेच्छ राजा की अंकशायिनी बनाकर बाप्पा रावल के वंशजों के साथ बैठकर भोजन करें तो यह दुराशामात्र है ! यह असंभव है ! ऐसा कभी हो नहीं सकता !

मानसिंह—यदि ऐसा होना असंभव है, तो मेरा भी यहाँ भोजन करना असंभव है ! और आपका भी अब चैन से रहना असंभव है !—समझे ?

प्रताप—खूब समझता हूँ, मानसिंह जी ! यह धमकी किसे दिखाते हो ? धमकी दिखाना देशद्रोही, विलासी, कायर राजपूतों को, जो विदेशी राजा के पैर चाटने के लिए उत्सुक हो रहे हों ! अच्छा, अब जो आपकी इच्छा हो, कीजिएगा। (तलवार की ओर इशारा करके) यह तलवार सदा इस धमकी की प्रतीक्षा मे रहेगी। और मान ! तुम्हारा भी यह अभिमान अवसर आने पर युद्ध मे परखा जायगा।

मानसिंह—(पृथ्वी पर पैर पटक कर) इतना साहस, प्रताप ! तुम्हारा इतना साहस ? याद रखना, कुछ ही समय बाद तोपों की गड़गड़ाहट मे तुम्हारा जीवन-संगीत समाप्त हो जायगा।

(मानसिह का तेजी से प्रस्थान)

(सहसा भीमसिंह का प्रवेश)

भीमसिंह—(जोर से चिल्लाकर, मानसिंह जिधर से गया है, उधर ही को देखकर) हमारा या तुम्हारा, यह तो भविष्य ही बताएगा! कृपया आते समय अपने फूफा को भी साथ लेते आइएगा!

(सब का प्रस्थान)

पटाक्षेप

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—चित्तौड़, सागरसिंह की सभा

समय—तीसरा पहर

(एक कवि का हाथ पकड़े हुए एक सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—जय हो, महाराज की।

सागरसिंह—खड्गसिंह ! यह तुम आज किसे पकड़ लाए ?

सैनिक—महाराज ! यह गली-गली मे घूमकर महाराज के विरुद्ध प्रचार कर रहा था। मना किया तो अकड़ने लगा। इसी से इसे पकड़ कर महाराज की सेवा मे ले आया हूँ।

सागरसिंह—(कवि की ओर वक्र-दृष्टि से देखकर) क्यों रे ! जो कुछ ये कहते हैं, क्या वह ठीक है ?

कवि—हाँ, महाराज ! बिलकुल ठीक है।

सागरसिंह—(दाँत पीसता हुआ) तू है कौन ?

कवि—कवि-कुल में उत्पन्न हुआ एक पुरुष।

सागरसिंह—कौन-से कवि-कुल मे ?

कवि—चंद-कवि-कुल मे।

सागरसिंह—अच्छा ! तभी हमारे विरुद्ध बग़ावत फैला रहा था ! उस छलिया ने भी छल से मुहम्मद गोरी को मरवा दिया था ! तेरी भी इच्छा कुछ उसी प्रकार का छल खेलने की जान पड़ती है !

कवि—हो सकता है !

सागरसिंह—तेरा नाम क्या है ?

कवि—क्रातिचंद।

सागरसिंह—(घूरता हुआ) इसी लिए नागरिकों में क्रांति के भाव उत्पन्न कर रहा था ?

कवि—जी हाँ ! इसी लिए कर रहा था।

सागरसिंह—अब भी करेगा ?

कवि—क्यों नहीं ?

सागरसिंह—इतना साहस ?

कवि—खुद कायर हो तो सभी को कायर समझते हो ? अपने भाई का साथ छोडकर एक विधर्मी का साथ देने मे ही तुम अपना महत्त्व समझते हो ? धिक्कार है, तुम्हे !

सागरसिंह—अरे मूर्ख कवि ! क्यों यह कैंची-सी जीभ चला रहा है ! तुझे पता है, तू किसके सामने बक रहा है ?

कवि—मुझे सब कुछ पता है, मैं किसके सामने बोल रहा हूँ !—बकते होंगे, आप !

सागरसिंह—(लाल-लाल आँखे निकाल कर) ओ नीच कवि ! चुप रह। नही तो जान से हाथ धो बैठेगा। अपने प्राणों की परवाह कर और जीभ सँभाल कर बोल।

कवि—विद्वानों को मृत्यु का भय दिखाना भारी मूर्खता है। तुम मारोगे किस को ?—शरीर को या आत्मा को ? शरीर रथ है, आत्मा रथी। रथ नष्ट हो जाने पर रथी अन्य रथ पर सवार होकर अपना काम करने लगता है। और आत्मा अजर अमर है; न वह काटा जा सकता है, न बिंध सकता है, न गलाया जा सकता है और न सुखाया जा सकता है।

सागरसिंह—रहने दे—इन दार्शनिक बातों को ! ये बातें कहकर किसी और को रमाना ! मैं तेरी सारी विद्वत्ता अभी झाड़े देता हूँ।

(उठकर ठोकर मारने के लिए पैर उठाकर
कवि की ओर बढता है)

कवि—(कटि-बंध में से एकदम छुरी निकाल कर) अरे नराधम ! क्यों आपे से बाहर हुआ जाता है ? जहाँ से उठा है, वही जाकर बैठ जा; नहीं तो यह पैर अभी कटकर भूमि पर गिर पड़ेगा !

सागरसिंह—(काँपता हुआ) अरे कौन है यहाँ ?

(दो प्रहरियों का प्रवेश)

दोनों—(प्रणामपूर्वक) क्या आज्ञा है, महाराज !

सागरसिंह—इस पाजी को आँखों के सामने से ले जाओ और घातक से कहो कि इसे फाँसी पर लटका दे। मंत्री जी ! घातक के नाम आज्ञा-पत्र लिख दीजिएगा।

मंत्री—जी आज्ञा।

(मंत्री घातक के नाम आज्ञा-पत्र लिखकर देता है)

सागरसिंह—पाजी के हथकड़ी डाल दो।

(दोनों प्रहरी कवि को हथकड़ी पहनाते है और आज्ञा-पत्र
ले उसे साथ लेकर चले जाते हैं)

सागरसिंह—(स्वगत) राजा को सदा सावधान रहना चाहिए। मेरी जरा-सी ढील से राज्य में क्रांति के दूत पैर पसारने लगे हैं। अब एक एक को चुनकर मरवा डालूँगा। (प्रकट) मंत्री जी ! देखा, इस तुच्छ कवि का साहस ? अब सारी बातें बनाना भूल जायगा ! बच्चू किसी का बहकाया हुआ फिरता होगा !

मंत्री—महाराज ! मुझे संदेह है, कहीं यह राणा प्रताप का गुप्तचर न हो !

सागरसिंह—गुप्तचर होता तो खुल्लमखुल्ला क्यों बग़ावत फैलाता ?

(सहसा एक दूत का प्रवेश)

दूत—(प्रणामपूर्वक) महाराज ! एक बड़ी विचित्र बात हुई। दो सैनिक एक बंदी को वध्य-शाला की ओर ले जा रहे थे कि बीच मे कुछ नागरिकों ने आकर दोनों सैनिकों को मार डाला और बंदी को छुड़ाकर भाग गए।

सागरसिंह—ओह ! नालायक बच गया।

(दुखी हो नैराश्य का भाव सूचित करता हुआ सिर नीचा करके बैठ जाता है)

मंत्री—महाराज ! इस प्रकार दुखी होने से कोई कार्य सिद्ध नहीं हुआ करता ! राजनीति और निराशा इन दोनों का संयोग सदा दुःखदायी हुआ करता है। इसलिए दुःख और निराशा को तिलांजलि देकर कुछ उपाय सोचना चाहिए।

सागरसिंह—मुझे कुछ नहीं सूझता, मंत्री जी ! मेरा सिर चक्कर खा रहा है। अब तो मन बहलाने के लिए जरा किसी अच्छी गायिका का गान हो जाय, तो अच्छा है।

मंत्री—महाराज ! राजा को सदा अग्नि के समान जाज्वल्यमान रहना चाहिए, जिससे कि कोई उसका अभिभव न कर सके। आप ऐसी दुर्बलता की बातें क्यों करते हैं ? गायिका का नृत्य-गान फिर भी हो सकता है। अब तो राज्य मे विप्लव भीषण नृत्य की तैयारी कर रहा है। इस नृत्य पर विजय प्राप्त करके ही आप उस नृत्य का आस्वादन कर सकेंगे।

सागरसिंह—सच है, मंत्री जी ! आप जो कुछ कहते हैं, ठीक ही कहते हैं, किंतु फिर भी, मेरे मन मे, न जाने क्यों, कोई सुंदर नृत्य-गान देखने-सुनने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो रही है। उस पर विजय पाना मेरे लिए कठिन प्रतीत होता है।

मंत्री—महाराज ! यदि आप विषयों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते, तो आप गलती खाएँगे। अंतःशत्रुओं को विना जीते संसार मे किसने बाह्य-शत्रुओं को जीता है। अतएव आपको उचित है कि इन आपात-रमणीय और पर्यंत-परितापी विषयों के चंगुल मे न फँसकर स्वयं आत्म-स्वरूप को पहचानें और प्रजा को सन्मार्ग पर प्रवृत्त करें।

सागरसिंह—मंत्री जी ! अधिक उपदेश न छाँटिए। मुझे ये रूखी बातें अच्छी नही लगतीं। मैं आराम करना चाहता हूँ। कौन है, यहाँ ?

(प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी—(प्रणामपूर्वक) क्या आज्ञा है, महाराज !

सागरसिंह—मुझे शयन-मंदिर का मार्ग दिखाओ।

प्रहरी—महाराज की आज्ञा सिरमाथे।

(दोनों का प्रस्थान)

मंत्री—(स्वगत) 'मूर्खस्य नास्त्यौषधम्' यह बिलकुल ठीक कहा है ! रोगी कटु औषध देने वाले वैद्य को सदा बुरी निगाह से ही देखा करता है ! अच्छा, मैंने अपना कर्तव्य पालन किया। मनुष्य को एकमात्र यही चाहिए। कोई माने न माने, यह उसकी योग्यता पर निर्भर है। मै भी अब चलकर अपना काम देखता हूँ।

(प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

स्थान—चित्तौड़, वसंतकुमार का गृहोद्यान

समय—संध्या

(वसंतकुमार चिंतित अवस्था मे इधर उधर घूम रहा है। मित्र पुष्पकुमार का प्रवेश)

पुष्पकुमार—मित्र ! आज उदासीन से क्यों टहल रहे हो ?

वसंतकुमार—कुछ भी नही, मित्र ! ऐसे ही मन बहलाने की चेष्टा कर रहा हूँ।

पुष्पकुमार—(स्मितपूर्वक) क्यों, तुम्हारे मन पर आज क्या मुसीबत आ गई ? कुछ बताओ तो सही ! संभव है, दो हिस्सों में बँटकर तुम्हारा दुःख कुछ हलका पड़ जाय !

वसंतकुमार—(उद्विग्नतापूर्वक) मत छेड़ो, पुष्प ! मेरी जीर्ण-विशीर्ण हृदय-तंत्री के तारों को—मत छेड़ो ! आज मुझे अकेला घूम लेने दो, मन बहलाने दो ! मधुर किंतु असह्य ठेस पाए हुए हृदय की नीरव ज्वाला को भीतर ही दबा लेने दो, मेरे मित्र !

पुष्पकुमार—क्यों, आज यह कौन-सी असह्य, नीरव, नीरूप ज्वाला आपके हृदय में प्रवेश कर गई है ? हमने तो अभी

तक स्वर्णमय ज्वालाओं को ही देखा-भाला है । नील-मेघ-वासिनी विद्युत् भी स्वर्ण-वर्ण ही होती है ! फिर यह असह्य, नीरव, नीरूप ज्वाला कहाँ से फूट पड़ी ? इसका उद्गम-स्थान कौन-सा है ? क्या आप बता सकते है ?

वसंतकुमार—इसका उद्गम-स्थान ?—यदि तुम सचमुच जानना ही चाहते हो तो मैं बताऊँगा, किंतु जरा ठहरो, मुझे कहते हुए संकोच होता है ।

पुष्पकुमार—मित्रों से संकोच कैसा ?—मुझे यही समझ में नहीं आता ! और फिर संकोच हो तो हमे हो ! जिसका विकास, उसी का संकोच ! क्यों ठीक है न ?

वसंतकुमार—अच्छा, सुनना ही चाहते हो, तो सुनो। ऐसी बे-सिर पैर की बाते क्यों करने लगे—'जिसका विकास, उसी का संकोच' ? मै न होता तो मित्र ! तुम सब 'विकास' और 'संकोच' भूल जाते !

पुष्पकुमार—क्यों, मित्र ! क्रुद्ध क्यों होते हो ? मैने तो साधारण-सी बात कही थी ! और फिर मुनि-वृत्ति ब्राह्मण-पुत्र को इतना क्रोध शोभा भी नहीं देता !

वसंतकुमार—(कुछ उत्तेजित होकर) ब्राह्मण-पुत्रों को फाँसी दे दो ! उन्होंने कोई मुनि-वृत्ति का ठेका लिया है ? उनके क्या दिल नहीं होता ? (कुछ गंभीर होकर) भला तुम्हीं बताओ, पुष्प ! सुंदरी की चारु छवि और शैवाल-से लंबे-लंबे बाल किसके मन-मृग को नहीं लुभाते ?

पुष्पकुमार—तो मालूम होता है, तुम्हारा मन किसी सुंदरी के केशों मे उलझा है और वायु-विकंपित उन्हीके साथ मुख-छवि मे डुबकियाँ ले रहा है ! प्यासा हरिण मृग-तृष्णिका मे फँसा है !

परिणाम की कुछ सुध नहीं ! मित्र ! याद रक्खो, ऐसी बातों का परिणाम बहुत बुरा होता है। देखो, रावण ने सुंदरी सीता पर मन ललचाया था और बाली ने अपनी भ्रातृ-वधू को अपनी अंकशायिनी बनाया था, उन्होंने सिवाय प्राण गँवाने के और क्या पाया था ? किंतु यह तो बताओ, वह है कौन, जिसने तुम्हें इतना विक्षिप्त-सा किया हुआ है ?

वसंतकुमार—उफ़ ! कुछ न पूछो, मित्र ! वह आकर्षण, वह रूप-माधुर्य, वे लंबे-लंबे चिकने बाल, वे बड़ी-बड़ी नील-कमल-सी आँखें, वह चाँद-सा मुखड़ा और वह तिल-कुसुम-सी नासिका—सब कुछ अलौकिक था, दिव्य था !

पुष्पकुमार—हाँ हाँ, माना कि सब कुछ स्वर्गीय था, तुम भी तो स्वर्गीय ठहरे ! स्वर्गीय और स्वर्गीया का संयोग तो सभी को अभीष्ट है ! किंतु यह तो बताओ, इस सब कुछ का आधार-भूत वह कौन-सी ललना है, जिसके ललन बनने के लिए तुम उत्सुक हो रहे हो ?

वसंतकुमार—तुम सुनकर आश्चर्य करोगे, मित्र ! अच्छा, यदि तुम सुनना ही चाहते हो तो सुनो।

पुष्पकुमार—हाँ हाँ, कहिए, मित्रों से इस प्रकार की बातें कभी न छिपानी चाहिएँ।

वसंतकुमार—एक दिन की बात है कि—मैं अपने प्रिय मित्र सागरसिंह से, जब कि वे रोग-शय्या पर पड़े थे, मिलने के लिए उनके अंतःपुर में गया था। उनके पास बैठे-बैठे अचानक ही मेरी दृष्टि, उनकी सुकुमारी नवयुवती रानी पर, जो कि समीप ही के कमरे मे शीशे के आगे खड़ी शृंगार करती हुई मुसकरा रही थी, जा पड़ी। वैसे तो मेरा हृदय उसकी वायु मे हिलती हुई

वेणी ने ही डस लिया था, परंतु कुछ ही क्षणों के अनंतर, ज्यों ही प्रिया ने मेरी ओर निहारा—बस—तभी से मेरा मन इस प्रकार जकड़ा हुआ है कि वह अभी तक मुक्त नहीं हो सका है।

पुष्पकुमार—मित्र! तुम्हारे अहोभाग्य है, जो ऐसी अनिद्य सुंदरी रानी के साथ तुम्हारी चार आँखे हो गई!

वसंतकुमार—(गहरी साँस लेकर) मेरी अभिलाषा अभी कहाँ पूर्ण हुई है! उस दिन के बाद मैंने रानी से कई बार मिलना चाहा, किंतु अवसर ही न मिला।

पुष्पकुमार—तो उनकी किसी अंतरंग दासी से ही कुछ बातचीत की होती! तुम तो राजा के मित्र हो! दासियों से तो जब चाहो, कोई बहाना निकाल कर बातचीत कर सकते हो! ऐसी बातों मे कोई संकोच से थोड़े ही काम चलता है!—किंतु फिर भी यह मार्ग है कंटकाकीर्ण—यह मै बताए देता हूँ!

वसंतकुमार—कुछ परवाह नहीं! प्रेम-पथ सदा संकटमय होता है, यह सब जानते है, परंतु फिर भी संसार मे प्रेमियों की कमी नहीं। वे प्रेम के पतंगे उस कोमल ज्योति की आराधना मे अपने प्राणों को निछावर कर देते हैं!

पुष्पकुमार—अच्छा, मित्र! आप तो प्राण निछावर करने पर तुले हुए हैं। हमारा जीवन तो इतना सस्ता नही कि यों ही किसी घृणित मांस-पिंड के पीछे पड़कर उसे गँवा बैठें!

वसंतकुमार—(हँसकर) मित्र! तुम तो बड़े वैरागी बन रहे हो! अच्छा, तुम्हे यदि यह चर्चा अच्छी नहीं लगती, तो मैं इसे बंद ही किए देता हूँ। किंतु यह तो बताओ, तुमने एक सुंदर युवती को घृणित मांस-पिंड की उपाधि क्यों दे डाली?

पुष्पकुमार—मैंने शास्त्रों में पढ़ा है कि कामिनी के विषय में

प्रतिकूल भावना मनुष्य के समस्त दोषों को दूर कर देती है । हमे यह कदापि न चाहिए कि हम—'खेलत्-खंजन-नयना, परिणत-बिबाधरा, कमल-मुकुल-स्तनी और पूर्णेंदु-मुखी'—इत्यादि विशेषणों द्वारा किसी तरुणी का स्मरण करे । ऐसा करने से हम कल्याण-मार्ग से बहुत दूर हटते जाएँगे और अंत मे भयंकर पतन के भागी बनेगे । प्रत्युत हमे उचित है कि हम—'यह देह बाहर से ही पद्म-गंधी प्रतीत होता है, किंतु भीतर मज्जा, अस्थि, विष्ठा, मूत्र, मेदा और क्रिमि-कुल से भरपूर है'—ऐसी भावना करे, जिससे कि समस्त दोषों से मुक्त होकर मोक्ष-पथ के पथिक बने ।

वसंतकुमार—मित्र ! रहने दो इस प्रतिकूल भावना को ! कितने पुरुष ऐसे है, जो इस प्रकार की भावना करते है ?

पुष्पकुमार—तभी तो दोषों के कीचड़ मे फँसकर असहायावस्था मे छटपटाते हुए तड़प तड़प कर प्राणों को छोड़ते है !

वसंतकुमार—पर आप स्त्रियों के विषय मे ही इतनी घृणा क्यों प्रकट करते हैं ? पुरुष क्या कुछ कम घृणित होते हैं ? उनके शरीर को भी तो घृणित वस्तुओं से परिपूर्ण एक चर्म-पात्र कहा जा सकता है !

पुष्पकुमार—क्यों नहीं ? अवश्य कहा जा सकता है ! स्त्री, पुरुष यदि दोनों परस्पर विरुद्ध-भावना करे, तो संसार का कल्याण ही न हो जाय !

वसंतकुमार—संसार के कल्याण की चिंता न करो, मित्र ! पहले अपने कल्याण की सोचो । मुझे तो ऐसा मालूम देता है कि किसी युवती ने तुम्हारे प्रेम को ठुकरा दिया है ! तभी तुम इस प्रकार की बाते बघार रहे हो !

पुष्पकुमार—(क्रोधपूर्वक) कुछ ईश्वर का भय करो, वसंत !

ऐसी बातें करते हुए तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। यदि तुमने इस मार्ग से कदम न हटाया, तो तुम्हारा भविष्य संकट-पूर्ण होगा, यह स्मरण रखना।

वसंतकुमार—अच्छा, अब इस उपदेश को रहने दो। तुमने अभी मुझ से कहा था कि—रानी की किसी अंतरंग-दासी से ही कुछ बातचीत करना। सो मैं ऐसा कर चुका हूँ। मैंने कोकिला नाम की दासी को वह काम सौंप रक्खा है।

पुष्पकुमार—(स्वगत) इतना कहने-सुनने पर भी यह मूर्ख अपनी धुन को नहीं छोड़ता! अच्छा, स्वयं फल भोगेगा! अब तो इसकी हाँ-में-हाँ मिलाना ही ठीक है! (प्रकट) बहुत ठीक, मित्र! तुम्हारी लगन भी खूब है! यह अवश्य कुछ गुल खिलाएगी!

(कोकिला दासी का प्रवेश)

वसंतकुमार—कहो, कोकिला! सब ठीक है न?

कोकिला—(हँसकर और पुष्पकुमार की ओर देखकर) पहले यह तो बताओ कि ये कौन हैं?

वसंतकुमार—तुम्हे पसंद भी आए या नही? ये मेरे मित्र पुष्पकुमार हैं। देखा इनका फूल-सा कोमल वदन? इसी लिए इनका नाम पुष्पकुमार पड़ा है।

पुष्पकुमार—(उत्तेजित होकर) तुम भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकते, वसंत! (दोनों हाथ जोड़ता हुआ) अच्छा, कृपा कीजिए! मैं आपसे बाज़ आया।

(पुष्पकुमार का क्रोधपूर्वक प्रस्थान)

कोकिला—(चकित-सी होकर) कितने सुंदर और कितने विरागी! विरागिता और सौंदर्य का कैसा अद्भुत संयोग है?

वसंतकुमार—लड़कियों का स्वभाव भी कितना चंचल होता है! किसी युवक को देखा नहीं कि उसी की चर्चा करने लगी! अच्छा हुआ, कंटक निकल गया! अच्छा, कहो, सब ठीक है न?

कोकिला—(कुछ झुँझला कर) क्यों, आप लड़कियों को इतना बदनाम क्यों करते हैं? आप भी तो इस दोष के भागी हैं! रानी को आपने एक ही बार देखा है, किंतु फिर भी आप उनके विषय मे कैसी-कैसी बाते किया करते हैं!

वसंतकुमार—अच्छा, आपके हृदय को बड़ी ठेस पहुँची! उसके लिए मै क्षमा चाहता हूँ। आप जो कुछ कहती हैं, ठीक कहती हैं। मै भी उसी दोष का भागी हूँ, जिसकी कि आप। अच्छा, अब तो कहिए, सब ठीक है न?

कोकिला—(मुसकराती हुई) हाँ, सब ठीक है।

वसंतकुमार—रानी ने मेरे पत्र का क्या उत्तर दिया है?

कोकिला—रानी बड़ी समझदार है, उन्होंने लिखित संदेश न देकर मौखिक संदेश दिया है।

वसंतकुमार—(उत्सुकतापूर्वक) जरा जल्दी कह सुनाओ। वह पत्र पढकर वे क्रुद्ध तो नही हुई?

कोकिला—क्रुद्ध कैसे हो सकती थीं! वे आपका सुंदर रूप तो देख ही चुकी थीं, तिस पर मैने आपके गुणों और आपकी सर्व-प्रियता का उनके आगे इस प्रकार वर्णन किया कि वे अब आप पर जान देती हैं।

वसंतकुमार—(उछलकर) धन्य हो, कोकिला! तुमने बड़ा अच्छा किया! वैसे तो मेरे मधुर रूप मे ही कुछ ऐसा जादू है कि जो उसे निगाह भर कर देख लेता है, वह उसका सदा के लिए

उपासक बन जाता है, किंतु फिर भी तुमने रानी के आगे मेरी प्रशंसा करके बहुत अच्छा किया । इसके लिए मै तुम्हारा कृतज्ञ हूँ ।

कोकिला—(स्वगत) वही बात है, रूप चुड़ैलों का, मिजाज़ परियों जैसे । लोग मजाक मे तारीफ कर देते है, तो समझता है कि बिलकुल ठीक कह रहे है ! मूर्खों के कोई सीग थोड़े ही होते है ! (प्रकट) आपके रूप मे सचमुच बड़ा आकर्षण है ! कहीं आप राजा होते, तो क्या सब्ज परी आपको उड़ा ले जाने से चूकती !

वसंतकुमार—(स्वगत) यह लड़की भी कितनी हँसमुख और कितनी चंचल है ! तबीयत चाहती है कि अपना दिल इसके आगे खोलकर रख दूँ । (प्रकट) तुम क्या सब्ज परी से कुछ कम हो ?

कोकिला—(कुछ लज्जित-सी होकर) अच्छा, अब इन बातों को रहने दीजिए । रानी जी का संदेश सुन लीजिए ।

वसंतकुमार—(अधीर होकर) हाँ हाँ, कोकिला ! कहो, जरा जल्दी कहो ।

कोकिला—रानी जी ने कहा है कि—'प्रियतम ! जब से मैंने तुम्हारी सौंदर्यमयी मुख-छवि का साक्षात्कार किया है, मेरे मन मे मधुर-मधुर उमंगे उठा करती हैं । मेरी आत्मा आपके एकांत-दर्शन के लिए तिलमिला रही है । शीघ्र ही अवसर पाकर मिलने की कृपा करें ।' इतना कहते-कहते उनका गला भर आया और वे मुझ से कहने लगीं कि—'कोकिला ! जैसे भी बन पड़े, उन्हे मेरे अनुकूल करने की चेष्टा करना । समय पाकर एक बार उन्होंने मुझ से बातचीत करनी चाही थी, किंतु उस समय मैंने उनकी

अवहेलना कर दी थी। मैं उनसे बिना बोले ही लज्जावश शयनागार मे प्रविष्ट हो गई थी। बस, तभी से वे मुझ से क्रुद्ध जान पड़ते हैं। बहुत काल के बाद उन्होंने यह प्रेम-पत्र भेजा है। उसका उत्तर मैंने संक्षेप मे दे दिया है। इससे अधिक कुछ भी कहने की मुझ में इस समय शक्ति नही है।' इतना कहकर वे चुप हो गईं और सतृष्ण नयनों से शून्य मे एकटक निहारने लगीं।

वसंतकुमार—कोकिला! मैंने अभी तुमसे कहा था न कि—मेरे रूप में कुछ जादू है। मैं अपनी झूठी प्रशंसा नहीं करता। बात वास्तव मे है ही कुछ ऐसी कि जो मुझे एक बार देख लेता है, वह मेरा प्रेमी हुए बिना नही रहता। यदि ऐसा न होता तो कहॉ मै दरिद्र ब्राह्मण-पुत्र और कहाँ वह चित्तौड़ की अनिद्य सुंदरी रानी!

कोकिला—अब अधिक आत्म-प्रशंसा जाने दो। यदि सागर-सिंह को इस बात का पता लग गया, तो क्या होगा?

वसंतकुमार—सागरसिह की बात रहने दो, कोकिला! सागरसिह किस मुँह से किसी को इस प्रकार के व्यापारों से रोक सकता है? प्रजा उससे असंतुष्ट है। बहन माधवी को छलपूर्वक युवराज सलीम के पास भेजते हुए उस नीच को तनिक भी लज्जा नही आई। मै इसका उससे बदला लेकर छोड़ूँगा। (लंबी सॉस लेकर, विचारपूर्वक) अच्छा, सागर! अब तुम्हें सहज ही छुटकारा नही मिलेगा। मैं तुम्हारी रानी को—उस राजपूतनी को—मुसलमानी बनाकर छोड़ूँगा। मैं भी 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' इस नीति का पालन करूँगा, शठता का उत्तर शठता से दूँगा। ओ उन्मत्त सागर! मेरा क्रोध तेरे लिए भयंकर वडवानल बनकर रहेगा। कुटिल! मै तुझे आस्तीन का साँप बनकर डसूँगा। तूने मित्रता

के पवित्र संबंध पर पानी फेर दिया है। मैं भी अब ऐसा ही करूँगा। कुलांगार राजपूत! अब मैं तेरा अनुगामी न होकर प्रतिगामी हो गया हूँ, यह तुझे समझ लेना चाहिए। तू भी याद रक्खेगा कि किसी से पाला पड़ा था। (कुछ रुककर) किंतु, रानी का अलौकिक रूप-लावण्य मेरे हृदय को लुभा रहा है। पर इस तरह काम न चलेगा। मैं सागर को उसके अनाचार का मज़ा अवश्य चखा दूँगा। वह होगा, या मैं हूँगा। (विचार-निमग्न हो जाता है; कुछ क्षणों के बाद) कातर हृदय! अब रानी का ध्यान छोड़ दे। रानी के रूप-सागर में अब कभी विलीन मत होना। इसमें तुम्हारा कल्याण नहीं। इसमें तुम्हारा प्रतिशोध नहीं। ओ दुष्ट-मान-मर्दिनि प्रतिहिंसे! आओ, तुम्हीं रानी के स्थान पर अब मेरे हृदय की अधिष्ठात्री बनो। (फिर सोचकर) ठीक है, अकबर का सेनापति मुनीमख़ाँ रानी के लिए तड़प रहा है। वह उसके प्रेम का भिखारी है। उसकी यदि मैंने रानी से भेंट करा दी, तो मेरा मनोरथ पूर्ण होगा। भला, मेरा और रानी का कैसा संबंध! मैं दरिद्र ब्राह्मण-पुत्र और वह ठहरी रानी! मैं मरु-स्थल का तुच्छ पौधा, वह नंदन-वन की मृदुल लता! मैं भूलोक का धूलि-कण, वह आकाश-विहारिणी स्वच्छ तारिका! और मैं मर्त्य और वह देवांगना! दोनों में आकाश पाताल का अंतर है। रही मुनीमख़ाँ की बात! वह रानी के सर्वथा अनुरूप है। भेद केवल इतना ही है कि वह यवन है और रानी हिंदू। किंतु, स्त्रियों का चपल स्वभाव सौंदर्यमय यौवन का पिपासु होता है। इसलिए रानी को सहज ही में इसके लिए तैयार किया जा सकता है। (प्रकट) रवि-किरणों के संपर्क से क़मल खिल उठता है, सो क्या कोकिला! तुम जानती हो?

कोकिला—हाँ, क्यों नहीं ? आपको निहारते ही रानी का मुख-कमल आनंद से खिल उठेगा।

वसंतकुमार—नहीं, नही; तुम मेरा अभिप्राय नही समझीं। मैं कहता हूँ, तुम्हारा मुख मुझे विकसित कमल के समान सुंदर प्रतीत होता है।

कोकिला—(स्मितपूर्वक) ब्राह्मण-पुत्र ! ऐसी बातें कहकर क्यों मुझे लज्जित करते हो ?

वसंतकुमार—कैसी लज्जा ? संसार मे प्रेम ही तो एक सार है। प्रेम और लज्जा दोनों का संयोग दुःखदायी होता है।

कोकिला—(स्वगत) इस ब्राह्मण-पुत्र का मन भी कितना गिरा हुआ है ! अभी रानी के लिए व्याकुल हो रहा था और अब मै इसकी प्रेम-पात्री बन गई ! ऐसा मनुष्य सहज ही धोखा खा सकता है। (प्रकट) तुम्हारी प्रेम-कथा मेरे मन को रिझाए लेती है, विप्रकुमार ! यह प्रेम का पाठ तुमने कौन से शास्त्र मे पढ़ा है ?—क्या बता सकते हो ?

वसंतकुमार—चाहे कही पढ़ा हो, तुम्हें इससे मतलब ! बस, अब अधिक बाते न बनाओ, चपल लडकी !

(कोकिला की ओर बढता है)

कोकिला—(पीछे हटती हुई) रहने दो, रहने दो, चपल कुमार ! यह क्या करने पर तुले हो ?

वसंतकुमार—अपनी प्रेमिका का हाथ सभी अपने हाथ मे लेना चाहते हैं। कोकिला ! तुम क्यों फिर इतना घबराती हो ?

कोकिला—नही, घबराती नहीं, मुझे लज्जा मालूम देती है।

वसंतकुमार—फिर वही लज्जा ! तिलांजलि दे दो—इस दो हृदयों के मिलाप मे बाधक होने वाली पिशाचिनी को।

कोकिला—(कुछ गंभीर होकर) तुम क्या सचमुच मुझसे प्रेम करते हो, ब्राह्मण-कुमार ? कहाँ मैं नीच-कुल मे उत्पन्न एक तुच्छ बालिका और कहाँ तुम्हारा उच्च ब्राह्मण-कुल ! उच्च और नीच का संयोग कैसा ?

वसंतकुमार—ये व्यर्थ की बाते जाने दो। प्रेम के राज्य मे कोई बंधन नहीं, कोई रुकावट नहीं।

कोकिला—(स्वगत) मनुष्य कितना स्वार्थी है ! अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए कैसी-कैसी युक्तियाँ ढूँढ निकालता है ! (प्रकट) यदि तुम सचमुच ही ऐसा उच्च विचार रखते हो, तो मै तुमसे प्रेम करती हूँ। किंतु यदि इसका पता रानी जी को लग गया, तो वे कुपित होंगी। तुम तो बच जाओगे, क्योंकि रानी तुम पर जान देती हैं। रही मैं, मै उनकी कोपाग्नि मे भस्म हो जाऊँगी।

वसंतकुमार—इसकी कोई चिंता न करो, प्रिये ! मै तुम्हे ऐसे गुप्त स्थान मे रक्खूँगा कि जहाँ रानी तो क्या वायु भी प्रवेश न कर सकेगी।

कोकिला—इसका यह अर्थ हुआ कि—आप मुझे बंदी बनाकर रक्खेंगे !

वसंतकुमार—नहीं, नहीं; घबराओ मत। सब ठीक हो जायगा। तुम्हें कोई कष्ट नही होने पाएगा।

कोकिला—तब तो मैं बड़ी सौभाग्यशालिनी हूँ। किंतु एक बात है; मैं महारानी को बहुत चाहती हूँ। और वे भी तुमसे मिलने के लिए अत्यंत उत्कंठित हो रही हैं। इस विषय मे तुमने क्या सोचा ?

वसंतकुमार—यवन-सेनापति मुनीमखाँ रानी के सर्वथा

योग्य है। वह बड़ा ही सुंदर, सुडौल युवक है। रानी उसे अवश्य पसंद करेंगी।

कोकिला—हाँ, ठीक है; तुमने बहुत अच्छा सोचा। उसे पाकर रानी जी की मनोकामना पूर्ण हो जायगी। भला, उस अधेड़ राजा से वे कैसे संतुष्ट हो सकती है! स्त्रियाँ सदा वीर पुरुषों को पसंद करती हैं। मुनीमख़ाँ वीर पुरुष है। उसे वे क्यों न पसंद करेंगी!

वसंतकुमार—(बाँहें चढ़ाता हुआ) बिलकुल ठीक कहती हो, कोकिला!—स्त्रियाँ सदा वीर पुरुषों को पसंद करतीं है। तुम बड़ी चतुर हो। तुम-सरीखी चतुर सहचरी पाकर मैं अपने को कृत-कृत्य समझता हूँ। अच्छा, लोहे को गरम देखकर चोट करना, और रानी के विचार से मुझे शीघ्र ही सूचित करना।

कोकिला—अच्छा, बिदा! रानी जी भी मेरी बाट जोहती होंगी। अधिक देर होने पर व्यर्थ ही चकझक करेंगी। उनकी इच्छा से मैं तुम्हें अवश्य सूचित करूँगी।

वसंतकुमार—देखो, प्रिये! मेरा हृदय तुम्हारी चितवन का बंदी है। तुम्हारी छवि से वंचित मेरे प्राण छटपटा जायँगे। शीघ्र ही इस दास की सुध लेना। अच्छा, बिदा!

कोकिला—बिदा!

(दोनों का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

स्थान—चित्तौड, राज-प्रासाद का अतःपुर

समय—संध्या

(रानी के शयनागार के समीप का घर, रानी, कोकिला और मोहनी का प्रवेश)

कोकिला—वाह, मोहनी ! खूब मन-मोहन रूप बनाया है ! तुम तो अब बिलकुल ही रानी जँचने लगीं !

रानी—कोकिला ! मुझे भय है।

कोकिला—क्यों, रानी जी ! आपको कैसा भय है ?

रानी—यही कि कही महाराज मोहनी पर ही न मोहित हो जायँ ! और यही राज-रानी बन बैठे !

मोहनी—(हँसकर) नहीं, रानी जी ! भला मेरा भाग्य यदि इतना प्रबल होता, तो मैं दास-कुल मे ही क्यों जन्म लेती ! और फिर महाराज भी इतने भोले नहीं जान पड़ते कि मुझे न पहचान सकें।

कोकिला—रानी जी ! मोहनी का अभिप्राय तो आप समझ गई होंगी। (हँसती है)

मोहनी—(लज्जा का भाव प्रदर्शित करती हुई) आः ! तुम्हारी हँसी और दूसरे का मरण ! तुम बड़ी धूर्त हो, कोकिला !

रानी—(मुसकराती हुई) यदि महाराज तुम्हें पसंद कर ले, तो हानि ही क्या है ?

मोहनी—(लज्जापूर्वक) रहने भी दीजिएगा, रानी जी ! आप भी कैसी बातें करने लगीं ? पहले एक से तो छुट्टी मिलने दीजिए !

रानी—छुट्टी-वुट्टी कुछ नहीं; अब तो तुम नाक मे नकेल डाले चलती-फिरती हुई छोलदारियों के झुंड मे सम्मान पाओगी ! तुम्हें यवनी बनना ही पड़ेगा !

मोहनी—(मुसकराती हुई) रानी जी ! आप हँसी करें या और कुछ, किंतु यह दृश्य होगा दर्शनीय ! मुनीमखाँ भी कितना मूर्ख है ! वामन होकर ऊँचे फल की इच्छा करता है ! यवन होकर हिंदू-ललना का हाथ पकड़ना चाहता है ! सियार सिंहिनी को अंकशायिनी बनाना चाहता है !

रानी—मुनीमखाँ का इसमे कोई दोष नहीं। वह धूर्त ब्राह्मण वसंतकुमार उसे चक्कर पर रक्खे हुए है। भगवान जाने, उसकी इन चालों का क्या परिणाम निकले ! (फिर उपहासपूर्वक कोकिला से) कोकिला ! तू तो अब राजा की मित्र-वधू होने वाली है। हमसे मिलती तो रहा करेगी न ?

कोकिला—(मुसकराती हुई) क्यों नही, रानी जी ! भला ऐसा भी कभी हो सकता है कि आपसे मिलना-जुलना बंद हो जाय !

रानी—तो सब प्रबंध हो गया है न ?

कोकिला—(उपहासपूर्वक) रानी जी ! मुझे इसके सिवाय कुछ पता नही कि वे रानी जी को बहुत चाहते है।

रानी—दुर पगली ! रानी तो अब मोहनी है !

कोकिला—चाहे कोई भी हो, किंतु यह भी एक विचित्र तमाशा होगा !

रानी—कोकिला ! महाराज को इसका तनिक भी ध्यान नहीं कि वसंतकुमार इतनी चलती रकम है।

कोकिला—ठीक है, रानी जी ! पर आप इस घटना से पहले

ही महाराज को इस षड्यंत्र से अवश्य सूचित कर दे। अन्यथा बड़ा अनर्थ होगा।

रानी—क्यों नहीं, कोकिला! मुझे इसका पूरा-पूरा ध्यान है। तुम निश्चित रहो। महाराज आज शयनागार मे छिपकर अपने मित्र के वास्तविक चरित्र को देखेगे।

(नेपथ्य मे कुछ बातचीत करने का-सा शब्द सुनाई पड़ता है)

कोकिला—(सहसा नेपथ्य की ओर देखकर) रानी जी! मालूम होता है कि मुनीमख़ाँ और वसंतकुमार दोनों बाते करते आ रहे हैं।

रानी—(मुँह पर हाथ रख हँसी को रोकती हुई) अच्छा, मैं अब जाती हूँ।

(रानी का प्रस्थान)

मोहनी—आओ, कोकिला! ज़रा दिल बहला ले।

(कोकिला और मोहनी दोनों मिलकर गाती हैं)

(गीत)

आओ, मेरे प्रियतम! आओ।
कोकिल-कुल-कूजित मधुवन में,
अलि-कुल-झंकृत कुंज-भवन में,
मीठे बोल सुनूँ किस क्षण में!
चंद्र-वदन अपना दिखलाओ।
आओ, मेरे प्रियतम! आओ॥
मन को कब इस शांति मिलेगी!
कब यह मानस-कली खिलेगी!
कब हत पीड़ा हाय! गलेगी!

सुंदर ! अधिक न अब तरसाओ ।
आओ, मेरे प्रियतम ! आओ ॥
कब से अटकी यहाँ खड़ी हूँ !
खड़ी-खड़ी मै यहाँ जड़ी हूँ !
झेल रही दुख-ज्वाल कड़ी हूँ !
निर्दय ! अधिक न अब कलपाओ ।
आओ, मेरे प्रियतम ! आओ ॥
दर्शन पा मन-आग बुझाऊँ !
कभी-कभी तो कल मैं पाऊँ !
अथवा छल-अभियोग लगाऊँ !
कितना ही फिर बुरा मनाओ ।
आओ, मेरे प्रियतम ! आओ ॥

(वसंतकुमार और मुनीमखाँ का प्रवेश)

वसंतकुमार—क्यों कोकिला ! तुम्हीं कूक रही थी न ? क्यों घबरा-सी क्यों गई ?

कोकिला—हाँ, ब्राह्मण-पुत्र ! रानी जी के साथ मिलकर ज़रा दिल बहला रही थी। (मुनीमखाँ की ओर देखकर) आपके साथ ये कौन हैं ?

वसंतकुमार—इन्ही का नाम मुनीमखाँ है। देखती नहीं, कितने सुंदर युवक हैं ?

कोकिला—हाँ, हैं तो सही।

वसंतकुमार—तो आओ। (पास ही बिछे पलंग की ओर इशारा करके) इसी पलंग पर सब बैठे जाते हैं।

(सब एक पलंग पर बैठ जाते हैं)

वसंतकुमार—सिपहसालार साहब ! (मोहनी की ओर इशारा करके) ज़रा रानी जी के रूप की मधुरता देखिएगा।

मोहनी—(लज्जित-सी होकर) ब्राह्मण-पुत्र ! रहने भी दो। (इतना कहकर सिर नीचा करके बैठ जाती है। और मुनीमखाँ की ओर तिरछी दृष्टि डालती है)

कोकिला—दोनों की जोड़ी खूब मिली है, ब्राह्मण-पुत्र ! एक रत्न तो दूसरा सुवर्ण।

वसंतकुमार—(एक ओर को कोकिला से) प्रिये ! तुम्हारी बोली में कितना मिठास है। कुछ देर के लिए ये बातें बंद करो। तुम जानती हो, तुमसे एक दिन ही जुदा रहकर मेरी क्या दशा हो रही है ?

कोकिला—नहीं, ब्राह्मण-पुत्र ! मुझे क्या पता ! और बिना बताए किसी की दशा का पता भी क्या लग सकता है।

वसंतकुमार—प्रिये ! जब से मैं तुम्हारे दर्शन-जल से वंचित हुआ हूँ, मछली की तरह छटपटा रहा हूँ। और मेरे प्राण-पखेरू उड़ा ही चाहते है।

कोकिला—(हँसती हुई) किंतु, अभी तक तो उड़े नहीं; छटपटा तो बहुत दिनों से रहे हो !

वसंतकुमार—तुम इसका अभिप्राय नहीं समझी, कोकिला ! इस छटपटाने मे ही एक अपूर्व आनंद है। हम इसी जन्म मे स्वर्ग-भोग भोग रहे हैं।

कोकिला—स्वर्ग-भोग या नरक-भोग ?

वसंतकुमार—स्वर्ग-भोग, प्रिये ! स्वर्ग-भोग। तुम क्या किसी देवांगना से कम हो ? तुम मेरी परी हो, मेरी उर्वशी हो !

कोकिला—(कुछ लज्जा का भाव प्रकट करती हुई) रहने भी दो, तुम पागल तो नहीं हो गए ?

वसंतकुमार—हाँ बाले ! तुम्हारे अंगों मे कुछ ऐसा ही जादू है। पुष्पित लता के समान तुममे मेरी आँखें अटक रही हैं।

कोकिला (चंचल हँसी हँसती हुई) हटो परे ! इस चर्चा को रहने भी दीजिए ! इतनी आसक्ति ठीक नहीं।

वसंतकुमार—(हँसता हुआ, मुनीमखाँ के कान में) देखो, रानी तो पसंद है न ?

मुनीमखाँ—भाई ! कुछ न पूछो। मुझे न मालूम था कि इस हुस्न की आँच मे पत्थर भी गल सकता है।

वसंतकुमार—देखो, सिपहसालार साहब ! (मोहनी की ओर इशारा करके) आज से ये तुम्हारी रमणी हुईं और तुम इनके रमण। उस अधेड़ राजा मे रमण बनने की शक्ति कहाँ ?

मुनीमखाँ—ठीक कहते हो, दोस्त !

वसंतकुमार—पर एक बात बड़ी उलटी हो गई ! तुमने राजा के मरने से पहले ही रानी पर अधिकार कर लिया। प्रायः सुना जाता है कि—राजा को मारकर राज्य पर अधिकार कर लेने के बाद ही रानी पर अधिकार होता है। तुमने बिना किसी तरह का कष्ट उठाए ही रानी को कब्जा लिया। मित्र ! तुम्हारा भाग्य सचमुच प्रबल है !

मुनीमखाँ—तो अब मै इनकी मदद से राजा सागर को जल्दी और विना किसी खास तकलीफ़ के ही मार सकूँगा !

मोहनी—हाँ, प्राणेश्वर ! मै इस काम मे आपकी पूरी पूरी सहायता करूँगी। मेरा तन, मन, धन सब आपके अर्पण है।

वसंतकुमार—भाई मुनीमखाँ ! तुम्हारा भाग्य तुम्हारे आगे दोनों हाथ जोड़े खड़ा है। तुम्हारी इच्छा आशा से भी अधिक पूर्ण होती जा रही है। तुम धन्य हो।

मुनीमखाँ—सब तुम्हारी मेहरबानी है, दोस्त! मै तुम्हारे इस अहसान का कायल हूँ। (मोहनी—नकली रानी—से) क्या तुम मुसलमान होने के लिए तैयार हो?

मोहनी—क्या आप हिंदू होने के लिए तैयार हैं?

मुनीमखाँ—हर्गिज नहीं; मैं अपना धर्म छोड़कर रानी तो क्या, किसी परी को भी नहीं चाहता!

मोहनी—तो मैं भी अपना पवित्र धर्म छोड़कर एक साधारण सेनापति तो क्या, किसी राज-राजेश्वर को भी नही चाहती!

वसंतकुमार—रानी जी! आज आप इतनी कट्टर क्यों हो गईं? आप तो धर्म की यही व्याख्या किया करती थीं कि—जिससे सुख-सिद्धि हो, वही धर्म है। सिपहसालार साहब के साथ रहकर आप अधिक सुखी रहेंगी। इसलिए अपने इस सार-हीन विचार को तिलांजलि दे दीजिए।

मोहनी—बस ब्राह्मण-पुत्र! अब अधिक बाते न बनाओ। आज मेरी आँखें खुल गई है। पतित मनुष्य का संसार मे कोई धर्म नहीं। संसार झूठे सुख के पीछे तड़पता है। विषय-वासना को तृप्त करने मे कुछ भी सुख नहीं। वह तो सुख का आवरण धारण करने वाली भयंकर दुःख-ज्वाला है। हरी-भरी दूर्वा से आवृत महागंभीर कूप है। जल का भ्रम उत्पन्न करने वाली ग्रीष्म-कालीन मध्याह्न की चमचमाती हुई वालुका है। समझे, विप्र-कुमार!

मुनीमखाँ—कहो, दोस्त! रानी जी तो बड़ी पंडिता मालूम देती हैं। अच्छा, मेरी रानी! तुम हिंदू रहो या मुसलमान, मैं तो तुम्हारे प्रेम का भिखारी हूँ। मोहब्बत की आग में यह झूठा धर्म का ढोंग राख हो जाता है!

मोहनी—अच्छा, प्रतिज्ञा करो कि तुम आज से यवन नहीं हो !

मुनीमखाँ—मै खुदा की कसम खा के कहता हूँ कि मै आज से मुसलमान नहीं रहा। मेरी रानी ! क्या तुम भी कसम खा सकती हो कि तुम आज से हिंदू नहीं रही ?

(नेपथ्य मे)

अरे नीच ! नर-पिशाच ! यह क्या बक रहा है ?

मुनीमखाँ—(कॉपता हुआ वसंतकुमार के कान मे) दोस्त ! यह कौन आ पहुँचा ? कहीं सागरसिह ही तो नहीं है ?

वसंतकुमार—(घबराया हुआ) हाँ सिपहसालार साहब ! ऐसा ही मालूम देता है।

(सहसा तलवार हाथ में लिए सागरसिंह का प्रवेश)

सागरसिंह—अरे विश्वासघाती ब्राह्मण ! ओ कुल-कलंकी कुत्ते ! ले, अपनी कुटिल चालों का फल चख ले । (वसंतकुमार का सिर काट डालता है)

(उसी क्षण नंगी तलवार हाथ में उठाए हुए रानी का प्रवेश)

रानी—(विद्युत् के समान दमकती हुई) दुरात्मा यवन ! तेरा इतना दु:साहस कि सूर्य-कुल की रानी पर कुदृष्टि डाले ! अरे पापी ! देख, तुझे अभी तेरे कुकर्मों का फल चखाती हूँ और रौरव नरक का द्वार दिखाती हूँ। (मुनीमखॉ का सिर एक ही वार मे धड़ से जुदा कर देती है)

रानी—महाराज ! देखा आपने अति विश्वास का फल ?

सागरसिंह—हाँ, प्रिये ! मैं आज अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। तुमने वसंतकुमार के विषय मे मुझ से अनेक बार कहा

था कि इसकी आँखें चंचल हैं और यह कोई धोखे-बाज़ आदमी मालूम होता है। इससे सावधान रहना। किंतु मैंने तुम्हारी इन बातों पर ध्यान नहीं दिया था। मैंने आज तुम्हारे असली रूप को पहचाना है। तुम सचमुच देवी हो।

रानी—(सिर नीचा करके) महाराज ! ऐसी बातें कहकर क्यों आप मुझे लज्जित कर रहे हैं ? मै तो आपकी एक तुच्छ सेविका-मात्र हूँ। प्रत्येक हिंदू-ललना का यह कर्तव्य है कि वह अपने स्वामी की सच्ची सेविका बने और आपत्ति के समय अपने धर्म की रक्षा सिंहिनी बनकर करे।

सागरसिंह—नहीं, प्रिये ! ऐसा मत कहो। अपने को सेविका मत समझो। यदि मनुष्य स्वामी है, तो स्त्री स्वामिनी है। और यदि तुम अपने को सेविका समझने मे ही गौरव समझती हो, तो हमें भी चाहिए कि हम भी अपने को सेवक समझने मे ही गौरव समझें। इसीमे पारस्परिक सद्भावना है, इसीमें एक दूसरे का सम्मान है, इसीमें प्रतिष्ठा है, इसीमें गौरव है। (नेपथ्य की ओर देखकर) कौन हैं यहाँ ? कुछ आदमी यहाँ आओ।

(कुछ सेवकों का प्रवेश)

सागरसिंह—हम जाते हैं। इन दोनों का यथोचित संस्कारादि कर देना।

सेवकगण—(प्रणामपूर्वक) महाराज की आज्ञा सिर-माथे।

(सेवकों को छोड़कर सब का प्रस्थान)

पटाक्षेप

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—आगरा, अकबर का महल

समय——मध्याह्नोत्तर

(अकबर अपने पलंग पर आराम से लेटा हुआ
हुक्का गुड़गुड़ा रहा है और बीच-बीच
में बोलता जा रहा है)

अकबर—हुकूमत का काम भी कितना मुश्किल होता है ! इसमे कभी प्यार से, कभी लालच देकर, कभी डरा-धमका कर, कभी सजा देकर और कभी दुश्मनों मे आपस मे फूट डाल कर काम लेना पड़ता है ! (हुक्का गुड़गुड़ाता है, कुछ सोचकर) हमारे बुजुर्गों ने कुछ ऐसी गलतियाँ की थीं, जिससे कि वे आराम से हिंदुस्तान पर हुकूमत नहीं कर सके थे । मैं उन सब गलतियों से बचने की कोशिश कर रहा हूँ । इसी लिए मैंने हिंदुओं पर से ज़जिया कर उठा दिया है, गो-वध की बिलकुल मनाही कर दी है । मेरे दरबार मे हमेशा गंगा-जल पिया जाता है । मैने इसी लिए हिंदुओं से

रिश्ता-नाता भी जोड़ना शुरू कर दिया है। (फिर हुक्के में दो-एक घूँट मारने के बाद) और सच पूछो तो, हिंदुओं को खुश करने के लिए ही मैंने 'दीन इलाही' मत की स्थापना की है । इन सब बातों का नतीजा यह हो रहा है कि राजा बिहारीमल, भगवानदास, टोडरमल, मानसिंह और राजा बीरबल आदि बड़े-बड़े हिंदू इस नए धर्म मे दीक्षित हो चुके हैं । केवल हिंदू ही नही, अबुलफजल और फैजी आदि मुसलमान भी इसमे शामिल हो गए है । अब अकसर हिदू लोग मुझ से खुश है, और हर एक काम मे जी-जान से मेरी मदद करने के लिए तैयार है । (हुक्का गुड़गुड़ाता है, फिर कुछ सोच कर) हूँ…! सब ठीक हो चुका, लेकिन वह मेवाड़ का टिमटिमाता चिराग़ अकबर-सूर्य की रोशनी को दबाने का इरादा कर रहा है ! अच्छी बात है, उसे भी देखूँगा ! एक बार तो मै उसे मनाने की कोशिश कर भी चुका हूँ । मैंने राजा मानसिंह को उसे मनाने के लिए उसके पास भेजा था, लेकिन वह नही माना । मैने उसे आधी गद्दी का मालिक बना देने की भी खबर भेजी थी, पर न जाने भला आदमी है किस ढंग का !—उसके लिए हाँ करना तो दूर रहा, राजा मानसिंह को ऐसी धता बताई कि वे बेचारे नाराज हो अपना-सा मुँह लेकर चले आए ! अब क्या किया जाय, यही सोचना है !

(हुक्के की कुछ घूँट जल्दी-जल्दी भर कर उसे एक ओर
कर देता है और गाल हाथ पर रखकर
विचार-निमग्न हो जाता है)

(सहसा मानसिंह के साथ शक्तसिंह का प्रवेश)

मानसिंह—(अभिवादन करके) हुजूर ! ये राणा प्रताप के भाई शक्तसिंह आपसे मिलने के लिए आए है ।

अकबर—(शक्तसिंह की ओर देखकर, आश्चर्यपूर्वक) क्यों, आप सचमुच राणा प्रताप के भाई हैं ?

शक्तसिंह—जी हाँ, मै सचमुच राणा प्रताप का भाई हूँ। आप आश्चर्य क्यों कर रहे हैं ?

अकबर—आश्चर्य कुछ नहीं; मै यही सोचता हूँ कि प्रतापसिंह के भाई का मेरे पास आना क्योंकर हुआ ! इसका क्या मतलब है !

शक्तसिंह—इसका मतलब है—प्रताप का दमन ! मैं चाहता हूँ कि प्रताप के घमंड को मुगलों के साथ मिलकर चूर-चूर कर डालूँ ! उसकी सारी ऐंठ मिट्टी मे मिला दूँ !

अकबर—(स्वगत) मेरी इच्छा को कुदरत खुद पूरा करने पर तुली है। धीरे धीरे मेरी सारी इच्छाएँ पूरी होती जा रही हैं। मेरे साम्राज्य मे एक काँटा टीस पहुँचा रहा था । उसका भी यह भाई मेरे सामने खड़ा उससे बदला लेने के लिए बेचैन हो रहा है। खुदा ने चाहा तो मै अब जल्दी ही हिंदुस्तान भर का शाहंशाह होने की इज़्ज़त हासिल करूँगा। (प्रकट) यह तो ठीक है, मुगलों के साथ मिलकर आप प्रताप के घमंड को चूर-चूर कर डालेंगे, पर यह तो बताइए कि इससे हमें क्या मिलेगा ?

शक्तसिंह—मेवाड़ के कर से आपका ख़ज़ाना अभी तक वंचित रहा है, यह तो आप जानते ही है। राणा प्रताप का दमन कर देने के बाद मेवाड़ की उर्वरा भूमि आपके कोश के लिए काम-धेनु का काम देगी।

अकबर—अच्छा, आप प्रताप के दमन के लिए क्या २ कर सकते हैं ?

शक्तसिंह—मुझे केवल थोड़ी सहायता की आवश्यकता है। मैं प्रताप के दमन के लिए सब कुछ कर सकता हूँ।

अकबर—थोड़ी सी सहायता तो आपको मेवाड से भी मिल सकती थी। आख़िर क्या मेवाड़ मे, जहाँ आपने अपनी जिदगी के इतने दिन काटे है और जवान हुए है, आपकी मदद को थोड़े भी साथी नही मिल सकते थे ? वह आदमी ही क्या, जो भीड़-वक्त के लिए अपने कुछ भी साथी बनाकर न रक्खे।

शक्तसिंह—यह सब कुछ है और हो सकता था, पर उतने से मेरी प्रतिहिंसा तृप्त न होती, मेरे हृदय की ज्वाला ठंढी न होती, मेरे मन को शाति न मिलती। मै तो चाहता हूँ, संसार में प्रताप का नामोनिशान ही न रहे! उसके कुल का एक एक प्राणी सदा के लिए अनंत मे विलीन हो जाय! वह इस पृथ्वी पर एक क्षण के लिए भी सुख की साँस न ले सके! मेरी यह प्रबल अभिलाषा विना आपकी सहायता के पूर्ण नहीं हो सकती थी। इसी लिए आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ, इसी साध को पूर्ण करने के लिए मैने आपका दरवाज़ा खटखटाया है और आपका शरणार्थी बना हूँ। आशा है, आप मुझे निराश न करेंगे।

अकबर—(स्वगत) यह तो सचमुच प्रताप की जड़ उखाड़ फेंकने पर तुला हुआ है! ऐसा मालूम देता है कि अगर वह इस वक्त इसके आगे आ जाय, तो उसे कच्चा ही चबा जाय! अच्छा, मै इसे और उकसाऊँगा! (प्रकट) आप बता सकते है कि प्रताप ने आपका क्या बिगाड़ा है, जिससे कि आप उससे इतना नाराज़ हो रहे हैं ?

शक्तसिंह—भले आदमी ने, मुझे, ज़रा-सी बात पर क्रुद्ध होकर अपने राज्य से निकाल दिया। इस बात का कुछ भी विचार

नहीं किया कि आखिर मैं उसका छोटा भाई ही तो हूँ, कोई शत्रु तो हूँ नही ! मेरे अभिमान को उसने जिस प्रकार ठुकराया है, सो मेरा मन ही जानता है ! कदाचित् वह मेरे सामने आ जाय, तो ईश्वर साक्षी है, मै उसे कच्चा ही चबा जाऊँ और डकार भी न लूँ ! (भूमि पर जोर से पैर पटकता है)

अकबर—(स्वगत) जो बात मैंने अभी सोची थी, वही हुई ! (प्रकट) क्या आप राज्य से निकाल देने का कारण बता सकते हैं ? आखिर प्रताप ने आपको राज्य से क्यों निकाल दिया ! ज़रा-सी बात पर तो ऐसी घटनाएँ नही घटा करती हैं !

शक्तसिंह—तो आप क्या सोचते हैं, सम्राट् ?

अकबर—मैं सोचता हूँ कि अवश्य ही कोई बड़ी भारी बात होगी, जिससे कि आपके भाई ने आपको इतनी बुरी तरह बे-इज़्ज़ती के साथ अपने राज्य से निकाल दिया है !

शक्तसिंह—आप क्या कहते हैं—'अपने राज्य से' और 'बे-इज़्ज़ती के साथ ?' राज्य उसका है या मेरा, इसका तो अभी निर्णय होना है ! मुझे खूब याद है कि पिता जी ने भाई जगमल को गद्दी पर बैठाया था और प्रताप ने सरदारों के साथ षड्यंत्र रचकर उस बेचारे को सिंहासन-च्युत करके स्वयं गद्दी पर अधिकार कर लिया ! फिर बच्चू का साहस इतना बढ़ गया कि किसी को कुछ समझता ही नही ! अहेरिया-उत्सव के समय मुझसे ही भिड़ पड़ा ! मैं कब चूकने वाला था ! किंतु, ओह ! उस बूढ़े पुरोहित ने बीच मे कूद आत्म-हत्या करके सारा मज़ा किरकरा कर दिया ! नही तो उसी वक़्त उसे भाले से बींध डालता और सदा के लिए सारा झगड़ा ही मिट जाता ! (कुछ सोचकर, लबी साँस लेकर) ओह ! आप क्या कहते है, सम्राट् !—'बे-इज़्ज़ती के साथ ?' कृपा करके

अब इस जले दिल मे आग न लगाइए, घाव पर नमक न छिड़किए! मेरी भावनाएँ छटपटा रही है! मेरा हृदय धक्-धक् जल रहा है! मेरी तीव्र इच्छा है कि आपकी सहायता से अब जल्दी से जल्दी ही इस बे-इज़्ज़ती का सूद-सहित बदला चुका लूँ! और अपने हृदय की धधकती ज्वाला को किसी प्रकार शांत करूँ! कहिए, बस अब अंतिम बार कह दीजिए कि सम्राट् मेरी प्रार्थना को मानकर मेरी सहायता करने के लिए तैयार भी हैं या नहीं ?

अकबर—(स्वगत) इसका क्रोध बिलकुल स्वाभाविक जान पड़ता है! इसकी प्रतिहिंसा ज्वालामुखी के समान अंदर ही अंदर धधक रही है और समय पाकर फूटा ही चाहती है! राणा प्रताप जैसे अक्खड़ आदमी का भाई और मेरी शरण आए!—मुझे कुछ असंभव-सा मालूम दिया था। मुझे इसमे कुछ छल की बू आती थी, किंतु अब मेरा सारा शक जाता रहा और मै अनुभव कर रहा हूँ कि अब तक जितने राजपूत मेरी शरण मे आए हैं, यह उन सब से ज्यादा गरम है। मैं इससे सब से अधिक काम ले सकूँगा।

शक्तसिंह—(अधीर-सा होकर) जहाँपनाह! आप क्या सोच रहे हैं? मैं आपसे अंतिम उत्तर चाहता हूँ। कृपया शीघ्र ही कृत-कृत्य कीजिए। नहीं तो मैं अपना और मार्ग ढूँढूँ!

अकबर—वीर राजपूत! मैं तुम्हारी बहादुराना शक्ल देखकर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम बाहर और भीतर से बिलकुल एक-जैसे मालूम देते हो। तुम भरोसा रक्खो, मै तुम्हारी हर तरह से मदद करने के लिए तैयार हूँ।

शक्तसिंह—(अभिवादनपूर्वक) मैं अपने को कृतार्थ हुआ समझता हूँ।

अकबर—क्यों, राजा साहब ! आपका-इनका मेल कहाँ और कैसे हुआ ?

मानसिंह—मैं आपके पास चला आ रहा था कि पीछे से मुझे किसी आदमी के बड़ी तेजी से आने की आहट सुनाई पड़ी; मुड़कर पीछे देखा तो इन पर दृष्टि पड़ी। ये बड़े क्रोध मे थे। मैंने कारण पूछा तो बोले कि—'बताऊँगा, पहले यह तो बताओ कि आप इस समय कहाँ जा रहे है ?' मैं बोला—'जहाँपनाह के पास'। फिर ये बोले कि वही जाकर सब बातों का पता लग जायगा।

अकबर—अच्छा, अब इनको आराम करने दीजिए और कल राजा भगवानदास और राजा टोडरमल आदि से सलाह-मशवरा करके सब बाते तै होंगी। देखूँ, तेज नश्तर के आगे यह काँटा कब तक टिकेगा !

(दोनों का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

स्थान—अकबर के अत पुर का विशाल चौक

समय—चाँदनी रात

(मीना-बाजार लगा हुआ है। युवतियो की टोलियाँ रंग-बिरगे वस्त्र पहने इधर उधर घूम रही है। कही नाचना-गाना हो रहा है। कही नाना प्रकार के पुष्पो, सुगधित द्रव्यो और अनेक प्रकार के बहुमूल्य पदार्थों से सुसज्जित दुकाने, जिन पर राजपूत-बालाएँ बैठी हुई है, लगी हुई हैं। और अमीर उमराओ की रमणियाँ और बेगमे सामान खरीदती फिर रही है)

(अकबर का घूमते हुए प्रवेश)

अकबर—(प्रसन्न-वदन, स्वगत) आज मैने कैसा दिल लुभाने वाला सौंदर्य देखा! रायसिह की पत्नी भी कैसी प्रेम की पुतली थी। जड़ाऊ गहनों से लदी हुई जब घर गई होगी, तो सब कैसे खुश हुए होंगे! (इधर उधर देखकर) अहा! कैसा सुंदर दृश्य है! रूप के इस तालाब मे मेरी आँखे मछलियों की तरह तर रही है। सौंदर्य की इस हाट मे कितने ही बेदाग़ चाँदों को हाजिर देख (ऊपर को देखकर) आसमान का चाँद खिसियाया हुआ-सा घूम रहा है। और प्रताप—वह मूर्ख प्रताप—पहाड़ों मे मारा-मारा फिर रहा है। ऐसा दिखाता है, मानों आसमान से अछूता ही चू पड़ा है। ओ! झूठे धर्म की डींग मारने वाले अभागे प्रताप! अगर तू भी अच्छे दिन देखना चाहता है, तो अपनी कन्या मेरे सुपुर्द कर दे। फिर तू भी सुख से रहना, मजे करना और दुनिया

का लुत्फ़ लूटना। भले आदमी! मैं तुझे आधी गद्दी देने को तैयार हूँ, इससे ज्यादा तू क्या चाहता है? देख, यह बच्चों की-सी ज़िद छोड दे। मैं जानता हूँ, तू बड़ा बहादुर है, पर तू अपनी बहादुरी का इस्तेमाल ठीक ढंग पर नहीं कर रहा है। मेरी बेशुमार फौज़ और बड़ी-बड़ी तोपों के आगे तेरी कोरी बहादुरी कब तक काम देगी? तू उससे कब तक जूझेगा? देख (नेपथ्य की ओर इंगित करके) यह मीना-बाजार लगा है। यह परियों से भरा हुआ नंदन-वन तेरी इंतज़ार कर रहा है! तू चाहे, तो इसका आनंद लूट सकता है। ओ मूरख! जात-पात के झूठे अभिमान को छोड दे। देख, वे भी तो तेरी ही जात के लोग है, जो अपनी औरतों को यहाँ भेजने मे अपना अहोभाग्य समझते हैं। (कुछ देर सोचकर, निराशा का भाव प्रकट करता हुआ, लंबी साँस लेकर) मगर वह बे-दिल इन बातों मे कब आने वाला है! अगर उसे ये बाते मंजूर होतीं, तो मेरे खिलाफ़ इतनी बग़ावत क्यों फैलाता। (कुछ उत्तेजित होकर) और क्यों काले नाग के साथ खेलने की दिल मे ठानता! खैर, अब इन बेकार बातों को जाने दो। (आगे चलकर पृथ्वीराज की स्त्री की ओर देखकर) कैसी गुलाब-सी औरत है। सूरत पर कैसा जादू खेल रहा है। ऐसा मालूम देता है कि खुदा ने खूबसूरती का सारा खजाना सिर्फ इसीके बनाने मे खत्म कर दिया हो। अच्छा, यह भी अच्छा ही है कि यह इधर अकेली ही खड़ी है! मै अभी इशारे से बात-की-बात मे मेला उठ जाने का हुक्म देता हूँ। (बाहर जाकर और आकर नेपथ्य की ओर देखते हुए) यह सब औरते बाहर निकली जा रही हैं। (फिर पृथ्वीराज की स्त्री की ओर देखकर) और यह, पता नही, खड़ी-खड़ी क्या सोच रही है! अच्छा, अब इसके पास चलता हूँ।

अकबर—(प्रेमियों की भाँति गिड़गिड़ाता हुआ दोनों हाथ जोड़ कर) नहीं, नहीं, यह क्या ? खफ़ा क्यों होती हो, सुंदरी ? (जेब से, बीच-बीच में हीरों से जड़ा हुआ मोतियों का हार निकाल कर) यह देखो, सब तुम्हारे लिए ही है। सुंदरी ! तिया-हठ छोड़ दो। देखो, मैं बार बार तुम्हारे आगे हाथ जोड़ता हूँ। खुदा की कसम, तुम्हें हमेशा के लिए रानी बनाकर रक्खूँगा।

सुंदरी—(क्रोधपूर्वक दाँत पीसती हुई) हट जा आगे से, बेशरम ! कामी कुत्ते ! आ, तुझे पर-स्त्रियों पर कुदृष्टि डालने का मज़ा चखाती हूँ।

(प्रेमातुर अकबर को वेग से झपट कर भूमि पर पटक देती है और दामन में छिपी हुई कटार को झटपट निकाल कर उसकी छाती पर सवार हो जाती है)

सुंदरी—बोल, पापी ! अब बता, क्या बकता था ? (कटार की नोक को अकबर की छाती से लगाती हुई) ले देख, अभी तेरे प्राण निकाले देती हूँ।

अकबर—(कातर स्वर में, दोनों हाथ जोड़ता हुआ) रहम करो, रहम करो, बहादुर औरत ! रहम करो। (दोनो कान पकड़ता हुआ) मैं कान पकड़ता हूँ, आगे ऐसा कभी न करूँगा। मेरी जान बख़्श दो, माँ ! मैं ऐसा फिर कभी न करूँगा।

सुंदरी—ओ कायर ! यदि तू सचमुच ही अपने प्राणों की भिक्षा चाहता है, तो प्रण कर—आगे से कभी भी राजपूत-युवतियों के साथ ऐसा अपमान-पूर्ण व्यवहार न करूँगा। तभी तुम्हारे प्राण बच सकते हैं, अन्यथा नहीं।

अकबर—(दीनता-भरी वाणी में) बहादुर रानी ! मैं प्रण करता हूँ, आगे से कभी भी, राजपूत-रमणी क्या, किसी भी पराई

औरत पर बुरी नजर नहीं डालूँगा। माँ! तुम्हारी सीख ने मेरी आँखें खोल दी हैं। आज मेरे दिल के पट खुल गए हैं। खुदा की असली रोशनी मैं आज तुम्हारी आँखों मे देख रहा हूँ। इस वक्त की तुम्हारी हर एक हरकत मेरे ऊपर जिंदगी भर कुरान की आयत की तरह असर डालती रहेगी।

सुंदरी—मैं कैसे समझूँ कि तुम आगे से ऐसा कभी न करोगे? हमारे शास्त्रों मे लिखा है कि—'प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति?' तुम तो बुद्धिमान हो, स्वयं भी इन बातों को जानते हो। भला, मनुष्य का स्वभाव भी कभी बदल सकता है? मनुष्य, जब प्राणों पर आ बनती है, पक्का आस्तिक एवं धर्मात्मा बन बैठता है। किंतु फिर कुछ ही समय बाद उसका वही नास्तिक, पापी तथा छलनामय स्वरूप संसार के रंगमंच पर अपना नग्न नृत्य करने लगता है। तब वह सारे प्रण, सारी शपथें भूल जाता है। उसका स्वभाव उसे उसी ओर जाने के लिए बाध्य करता है। फिर तुम्हारे इस प्रण को भी मै वैसा ही क्यों न समझूँ? जिसने अब तक पराई स्त्रियों के सतीत्व-हरण मे ही अपना गौरव समझा हो—उसीमे अपनी राज-प्रतिष्ठा समझी हो—वह सहसा अपने स्वभाव को बदल देगा, मै कैसे विश्वास करूँ?

अकबर—(बहुत ही दीनता-भरी वाणी में) माँ! बस, अब यह संदेह रहने दो। मेरा कलेजा टूक-टूक हुआ जा रहा है। मैं उन आदमियों मे नही हूँ, रानी-माँ! जो अपने प्रण को भूल बैठते हैं। आख़िर मैं ख़ानदानी आदमी हूँ। ख़ानदानी आदमी कभी प्रण से टलना नही जानते। मनुष्य मे कमजोरियाँ भी होती हैं, किंतु एक समय वह आता है, जब कि जरा-सा इशारा पाते ही वे सब एकदम कहीं ग़ायब हो जाती है और फिर कभी भी उभरने

नहीं पाती। माता! मै आपसे कह चुका हूँ—'आज मैंने आपकी आँखों मे वह रोशनी देखी, जिसने मेरे दिल की हर एक तह को रोशन कर दिया है'। आपने मेरे ऊपर बड़ा भारी अहसान किया है, माता! मैं आपके इस ऋण को कैसे चुकाऊँगा?

सुंदरी—(छाती पर से उठती हुई) अच्छा, जाओ, अकबर! ईश्वर की यही इच्छा है कि मै तुम्हे क्षमा कर दूँ। आगे से अपने दीन-ईमान का ध्यान रखना।

(वेग से प्रस्थान)

अकबर—(स्वगत) अकबर! ओ पापी अकबर! तेरी सारी शानोशौकत मिट्टी मे मिल गई। अब क्या मुँह लेकर तू दुनिया में रहेगा? कौन-सा मुँह लेकर तू बेगमों के पास जायगा? न जाने, अब मुझे उनकी कितनी झिड़कियाँ सहनी पड़ेगी। (कुछ क्षण सोचकर) अच्छा! जो कुछ होगा, अब तो सहना ही पड़ेगा। क्या करूँ? कैसे करूँ? मैं कितना मूर्ख हूँ कि इतने बड़े राज्य का मालिक होकर भी यह दुर्दशा भोगूँ! इसमें किसी का क्या कसूर!—न मालूम, मैंने किस बुरे मुहूर्त में इस नौरोज के मेले की नीव डाली थी। न मालूम, उस वक्त मेरे दिमाग़ पर क्या भूत सवार था! अच्छा, जो कुछ हुआ सो हुआ! मगर वह औरत क्या थी, बला थी, आफ़त थी। ऐसा मालूम देता है कि उस पाक परवरदिगार ने मेरे पापों का फल देने के लिए मेरे ऊपर आसमान से अचानक बिजली गिरा दी हो! मुझे उसने भस्म नही किया, यही ग़नीमत है। (सोचकर) पर ये हिंदू लोग कितने रहम-दिल होते हैं। इतना भयंकर कसूर करने पर भी प्राणों की भीख दे डालते है। इज्ज़त आबरू उतारने के लिए तैयार हो जाने वाले के भी कसूर को माफ़ कर देते है। मैंने भी इनके सीधेपन से—इनके भोलेपन से—कितना

फ़ायदा उठाया है ! इनको कैसा उल्लू बनाया है ! इन्हीं का जूता और इन्हीं का सिर ! इन्ही के भाई और इन्हीं के दुश्मन ! मेरी दुरंगी नीति ने राजनीति का बाना पहना है। अकसर सभी हिंदू मेरे जाल मे फँस चुके है, किंतु वह घमंडी प्रताप अब भी मेरे मुकाबले मे डटा है। आज भी मेरी आँखों का काँटा बना हुआ है। पता नहीं, किन फौलादी परमाणुओं से उसका गात बना है। कितने ही दिन बीत गए, इतनी बड़ी हुकूमत के आगे तना खड़ा है। अब मैं इसका पूरा पूरा इंतज़ाम करूँगा। इसकी भतीजी की इतनी हिम्मत कि बादशाह समझकर मेरी इच्छा पूरी करनी तो दूर रही, उलटी मेरी जान लेने पर उतारू हो गई ! काफ़िर शक्तसिंह ! तुम्हारी लड़की ने आज मेरे साथ जो सलूक किया है, मैं तुमसे उसका बदला अवश्य लूँगा। जब तक मै तुम्हारे साथ मिलकर प्रताप को ठीक रास्ते पर नही लाता, बस तभी तक तुम मुझे अपना समझो। आखिर तू भी मेरे दुश्मन का ही तो भाई है ! मौका आने पर तुझे भी देख लूँगा।

(सोचते हुए प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

स्थान—हल्दी घाटी

समय——प्रभात

(राणा प्रताप सरदारों के साथ अपनी सेना के मध्य-भाग में खड़े हुए उसे उत्तेजित कर रहे है)

प्रताप—मेरे वीर सरदारो और सैनिको ! आप लोगों को पता होना चाहिए कि आज हमारे आगे जीवन और मरण का

प्रश्न है। आज हमे मुगलों के विशाल-सैन्य और मानी मानसिंह जैसे सेनापतियों का डटकर मुकाबला करना है। आज हमे अपने सच्चे क्षत्रियत्व का परिचय देना है। देखना, हम कभी इस भयंकर परीक्षा मे अनुत्तीर्ण न हो जायँ ! अपने क्षत्रियत्व पर कलंक न लगा बैठे ! वीरो ! आज प्राण-पण से हमे मातृ-भूमि की रक्षा करनी है। देखो, प्राणों के रहते उसके पवित्र कलेवर को विदेशी विधर्मी कलंकित न कर सकें ! क्षत्रियों के लिए युद्ध से बढ़कर और कोई सुअवसर कब आ सकता है ! क्षत—हानि—से बचाने वाले का नाम ही क्षत्रिय है ! यदि हमने मातृ-भूमि को हानि से न बचाया, तो हम क्षत्रिय ही कैसे ! और इन निंदित प्राणों को रखकर ही हम क्या करेगे ! वीरो ! यदि तुमने विदेशियों को मार भगाया, तो मातृ-भूमि की रक्षा कर लोगे और यदि रण मे लड़ते-लड़ते प्राणों की बलि चढ़ा दी, तो सीधे स्वर्ग जाओगे। तुम्हारे दोनों ही हाथों मे लड्डू है। आज मानसिंह को उस दिन की धमकी का ऐसा मजा चखा दो कि फिर कभी इस ओर मुँह न उठाए ! आज विदेशी विधर्मियों को दिखा दो कि स्वजाति और स्वधर्म की रक्षा के लिए सच्चे क्षत्रिय किस तरह मारना और मरना जानते हैं ! भगवान तुम्हारी सहायता करेगे।

सब—जय, महाराणा प्रतापसिंह की जय।

प्रताप—किंतु आप सब लोग एक बात का ध्यान रखना। पहले उन्हे ही हमला करने देना। आप लोग चुपचाप-किंतु सावधान होकर अपने स्थानों पर डटे रहना। प्रतीक्षा करने के बाद मानसिह स्वयं ही आगे बढ़कर हमला करने के लिए आज्ञा देगा। जब यवन-सेना हमला करने के लिए आगे बढ़े, तो आप

लोग उन पर एकदम टूट पड़ना । मै सलूंबराधीश गोविंदसिह और झालापति पन्ना जी के साथ मानसिह और सलीम की तलाश मे रहूँगा । इससे यह होगा कि जब यवन लोग युद्ध के लिए आगे बढ़ आयँगे और उनके और हमारे बीच जब घमासान मच जायगा, तो मानसिह तोपों का मुँह खोलने की आज्ञा देगा । एक ओर हम होंगे, दूसरी ओर तोपे, और बीच मे होगी मुगल-सेना । उन्हीं की तोपे और उन्ही की सेना ! कैसा सुंदर दृश्य होगा ! मुगलों की तोपे मुगलों को भून रही होंगी ! और उलटी मानी मानसिह के अभिमान को चूर-चूर कर रही होंगी ! समझे आप लोग ?

गोविंदसिंह—महाराज ! धन्य है आपको । आपके युद्ध-कौशल को देखकर शत्रु दंग रह जायँगे । युद्ध में युक्ति से ही काम चला करता है, कोरी वीरता से नहीं । हमारे बहुत से राजपूत भाई युक्ति से काम न लेकर अक्खड़पन से काम लेना चाहते हैं । यही उनकी भूल है । इसी लिए उन्हे अनेक युद्धों मे पराजित होना पड़ा है । हमे अपनी भूलों का सुधार अवश्य करना चाहिए और झूठी राजपूती शान को तिलांजलि दे देनी चाहिए । इसी मे हमारी भलाई है । क्यों, झालापति जी ! आपकी इसमे क्या सम्मति है ?

झालापति—सलूंबर-नरेश ! मै आपकी बात से सोलह आने सहमत हूँ । हमे राणा जी की बात का, वेद-वाक्य समझकर, पालन करना चाहिए । इस भयंकर विपत्ति के समय राणा जी ही हमारे एकमात्र नेता हैं । राणा जी ही आजकल इस अभागे देश के एकमात्र रक्षक हैं । हमे राणा जी में पूर्ण विश्वास रखना चाहिए । और अपने प्राणों को हथेली पर रखकर ऐसा युद्ध

करना चाहिए कि शत्रु लोग सदियों तक उसे याद रक्खें। और आवश्यकता पड़ने पर हमे यह भी चाहिए कि हम अपने राणा के प्राणों की अपेक्षा अपने प्राणों को तुच्छ समझकर उनके प्राणों के स्थान मे अपने प्राणों की बलि चढ़ा दे।

सब—बोलो, राणा प्रतापसिंह की जय।

(सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

चौथा दृश्य

स्थान—हल्दी घाटी के समीप मुगलो की छावनी

समय—प्रभात

(मानसिंह और सलीम परस्पर वार्तालाप कर रहे है)

सलीम—राजा साहब ! लड़ाई मे देर क्यों हो रही है ?

मानसिंह—शाहज़ादा साहब ! मेरी इच्छा थी कि प्रताप खुद पहले हमला करता, जिससे उसकी शक्ति का अंदाज़ा लग जाता।

सलीम—राजा साहब ! मुझे यह ढील अच्छी नहीं लगती। मै चाहता हूँ कि लड़ाई एकदम शुरू हो जाय, चाहे हमे ही पहले हमला करना पड़े। हमले की इंतज़ार करना कायरों का काम है।

मानसिंह—शाहज़ादा साहब ! अधिक बातें बनाने मे क्या रक्खा है। हमले की इंतज़ार करना कायरों का काम है या बहादुरों का, यह तो समय ही बतायगा ! आप इसकी क्यों चिंता करते हैं ? आप तो बादशाह के प्रतिनिधि की हैसियत से यहाँ आए है ! युद्ध किस तरह होगा, कब होगा, हमला पहले कौन करेगा—इत्यादि बातें हमारे अधीन हैं। हम जब चाहेगे, जिस तरह चाहेंगे,

तभी हमला होगा और उसी तरह होगा। आपको बीच में हस्त-क्षेप न करना चाहिए । (इधर उधर देखकर) कहाँ हैं, महावतख़ाँ ? मैं उनसे फिर कहे देता हूँ कि जब तक मैं हुक्म न दूँ, युद्ध न छेड़ा जाय।

(महावतख़ाँ का प्रवेश)

मानसिंह—महावतखाँ ! देखो, जब तक मैं लड़ाई के लिए हुक्म न दूँ, तब तक लड़ाई मत छेड़ना।

महावतखाँ—जो हुक्म, राजा साहब !

सलीम—क्यों, राजा साहब ! आप मेरी बात का कुछ भी खयाल नहीं करते ! मैं कह रहा हूँ, अभी लड़ाई छेड़ देनी चाहिए, मुझे यह देर अच्छी नहीं लगती। और आप मेरी बात को टालते जा रहे हैं ! इसका क्या मतलब है ?

मानसिंह—इसका मतलब भविष्य बतलाएगा, शाहज़ादा साहब ! आपको हमला करने के लिए अधिक ज़िद न करनी चाहिए।

सलीम—तो क्या मैं मिट्टी के बुत की तरह सिर्फ यह सब खेल देखने के लिए ही यहाँ आया हूँ ? मेरे यहाँ आने का और कुछ मतलब ही नहीं ?

मानसिंह—हाँ, शाहज़ादा साहब ! आपके यहाँ आने का और कुछ मतलब नहीं। आप केवल यहाँ मिट्टी के बुत की तरह सब खेल देखने के लिए ही पधारे हैं। बादशाह सलामत ने लड़ाई का सारा भार मुझ पर डाला है। यदि उसमे किसी प्रकार की ख़राबी आई, तो उसका सारा दोष मुझ पर ही आएगा। इसलिए आपको व्यर्थ ही हस्त-क्षेप न करना चाहिए।

सलीम—राजा साहब ! यह आपकी मेरे साथ सरासर ज्यादती है । आपको बादशाह सलामत ने बहुत सिर चढ़ा रक्खा है । नही तो आप मेरे आगे इस तरह नही बोल सकते थे । आप मुझे इस लड़ाई मे अपने हाथ की कठपुतली बनाकर रखना चाहते हैं । यह कभी न होगा । मै शाहजादा हूँ । शाहज़ादा एक सिपहसालार के हुक्म की तामील करे, यह क्योंकर हो सकता है ! मै अभी हमला करने का हुक्म देता हूँ । (महावतखाँ से) महावतख़ाँ ! जाओ, फौज को अभी लड़ाई के लिए जाकर तैयार करो और जल्दी ही हमला करने का हुक्म दो । मै देखता हूँ कि राजा साहब कैसे मुझे रोकते है !

मानसिंह—(बहुत गभीर होकर) शाहजादा साहब ! आप शाहज़ादा अवश्य है, किंतु अभी बच्चे है । अभी आपको अनुभवी आदमियों से बहुत कुछ सीखना है । खैर, जब आप मानते ही नही हैं और अपनी हठ पर डटे है, तो मै दो घंटे तक आपको अपनी मर्जी पूरी करने के लिए मौका देता हूँ, पर इसका यदि कोई बुरा परिणाम निकला, उसके उत्तरदायी आप होंगे, मै नहीं, क्योंकि आपकी ज़िद पूरी करने के लिए ही लाचार होकर आपको दो घंटे का मौका दिया जा रहा है । हमारी आपस की फूट से शत्रु को फ़ायदा न हो सिर्फ इसी लिए ऐसा किया जा रहा है । मै तब तक चुप रहूँगा ।

(मानसिंह का सलीम को अभिवादन करके प्रस्थान)

सलीम—महावतख़ाँ ! देखी, इस काफ़िर की बात ! अपनी कैसी हेकड़ी चलाता है !

महावतखाँ—नही, शाहजादा साहब ! ऐसा न कहिए । राजा साहब सोने के आदमी है । ये न होते तो मुगल सल्तनत इतनी

कभी न फैल सकती थी। बादशाह सलामत इन्हे अपना दाहिना हाथ समझते हैं और इनकी बडी इज्ज़त करते है।

सलीम—मालूम होता है, राजा साहब ने तुम्हें भी कुछ घूँटी पिला दी है, जिससे कि तुम उनकी इतनी तारीफ़ करते हो !

महावतखाँ—नही, शाहजादा साहब ! यह बात नही है। किसी की खूबियों का बयान करना कोई बुरी बात नही है। जिस आदमी के अंदर जो खूबी हो, भले आदमी का फ़र्ज है कि उसकी दिल खोलकर तारीफ़ करे।

सलीम—अच्छा, अब इन बेकार बातों को जाने दो। वक्त आने पर खूब दिल खोलकर तारीफ़ कर लेना। अब तो जल्दी ही मौका देखकर काफ़िरों पर हमला कर दो।

महावतखाँ—देखिए, शाहजादा साहब ! माफ़ कीजिए, किसी को फ़जूल ही काफ़िर कहना ठीक नहीं। हम मुसलमानों को भी अगर कोई बेईमान कहने लगे, तो उस वक्त हम पर क्या गुजरे, यह आप खुद सोच सकते हैं।

सलीम—अच्छा, यार ! जाने भी दो। अपना असली काम देखो। मेरे मुँह से तो सिर्फ आदत पड़ जाने की वजह से यह 'काफ़िर' लफ्ज़ निकल जाता है।

महावतखाँ—मगर शाहजादा साहब ! ऐसी आदत भी किस काम की, जिससे फ़जूल ही किसी का दिल भारी हो। और फिर आप तो शाहज़ादा है, ख़ानदानी आदमी हैं। आपको ऐसी बातों का ज्यादा खयाल रखना चाहिए। इसी मे आपकी तारीफ़ है।

सलीम—महावतख़ाँ ! तुम भी बड़े सनकी हो। मै कह चुका हूँ, इन बेकार बातों को रहने दो, जल्दी ही जाकर दुश्मनों पर

महावतखाँ—अगर आप पहले ही 'काफ़िरों पर' यह न कहकर 'दुश्मनों पर' ऐसा कह देते तो आगे बात ही न चलती ! खैर, अब मै आपके हुक्म की तामील करूँगा और जल्दी ही जाकर दुश्मनों पर हमला करूँगा ।

(महावतखाँ का अभिवादन करके प्रस्थान)

सलीम—मै भी अपने खेमे मे जाकर कुछ खा-पीकर अभी अपनी फौज को लेकर चलता हूँ । देखता हूँ, दुश्मन कब तक पहाड़ों मे छिपे रहेगे ।

(प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—हल्दी घाटी का रण-क्षेत्र

समय—मध्याह्न

(मानसिंह एक ऊँचे टीले पर खड़े होकर दूर से राजपूतों और मुगलो का युद्ध देख रहे है)

मानसिंह—वही बात हुई, जिसकी संभावना थी । एक ओर से महावतख़ाँ आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा और दूसरी ओर से सलीम । महावतखाँ की यवन-सेना पर बगल से वीर राजपूतों ने अकस्मात् आक्रमण कर दिया । ओ हो ! राजपूत लोग गाजर-मूली की तरह महावतख़ाँ की मुगल-सेना को काटे डाल रहे हैं ! दूसरी ओर राजपूतों के वेग को रोकने के लिए सलीम की सेना ने तोपे दागनी आरंभ कर दी है ! परिणाम यह हो रहा है कि बीच मे महावतख़ाँ की सेना बुरी तरह भुन रही है ! एक

ओर से राजपूतों की भयंकर तलवारें, बर्छियाँ और भाले और दूसरी ओर से सलीम की भीषण आग बरसाने वाली तोपें ! कितनी भयानक मार है ! कितना हाहाकार मचा हुआ है ! मरते हुए मुगल-सेना के सिपाहियों की 'अल्ला, अल्ला' की पुकार से आकाश गूँज रहा है ! परंतु उन बेचारों का क्या दोष ! यह तो मूर्ख दंभी सलीम का रण-चातुर्य रो रहा है ! भले आदमी को मना किया था कि पहले हमें आक्रमण न करना चाहिए, पर माना ही नहीं ! अपने शाहज़ादापन की ऐंठ में आ गया ! मैंने भी आज़माने के लिए दो घंटे का अवसर दे दिया ! ओह ! यह तो मुगल-सेना पीठ दिखा गई और कितनी बुरी तरह भागी जा रही है ! सलीम की तोपें भी शांत हो गईं ! वह भी अब भागने की सोच रहा है ! ओह ! वह तो भाग भी चला ! राजपूत लोग पीछा करते हुए बराबर आगे बढ़े जा रहे हैं ! अब मुझे अधिक विलंब न करना चाहिए । मैं अब स्वयं चलकर सैन्य-संचालन करता हूँ और देखता हूँ कि प्रताप के वीर राजपूत अब कैसे आगे बढ़ते हैं !

(झटपट पास ही एक पहाड़ी वृक्ष के तले बँधे हुए घोड़े पर सवार होकर वेग से प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

छठा दृश्य

स्थान—हल्दी घाटी, पर्वतीय शिखर

समय—तीसरा पहर

शक्तसिंह—मैंने अरावली पर्वत के दुर्गम से दुर्गम और गुप्त से गुप्त मार्ग मुगलों को बता दिए, यही मेरा काम था, किंतु पता लगा है कि सलीम ने शीघ्रता करके काम बिगाड़ दिया । उलटी मुगल-सेना ही फंदे मे पड़ गई ! ओ मेवाड़ ! मेरी जननी जन्म-भूमि ! ओ अपने पुत्र को अपनी गोद से वंचित करने वाली पिशाचिनी ! सुन, ज़रा कान खोलकर सुन, सलीम की गलती से मेरी प्रतिहिंसा तड़फड़ाती ही रह गई ! (कुछ दूर पर एकटक देखकर हर्षपूर्वक) अहा ! वह देखो, राजा मानसिंह ने मुगल-सेना के बीच में पहुँचे हुए राजपूतों पर तोपों की भयंकर अग्नि-वर्षा प्रारंभ कर दी है ! राजपूत लोग भी प्राणों की परवाह न करके पतंगे की तरह उस अग्नि-वर्षा के साथ जूझ रहे है ! अब मेरे मन को कुछ शांति मिलेगी ! अब मेरी प्रतिहिंसा की ज्वाला कुछ ठंढी पड़ेगी ! बेचारे राजपूत कब तक आग उगलने वाली तोपों का मुकाबला करेंगे ! आख़िर सब उस आग मे भस्म हो जायँगे ।

(सहसा राणा प्रताप चेतक पर सवार हुए आँधी के समान
वेग से उस पर्वतीय शिखर की तलेटी से होकर
गुजरते है और अपनी राजपूत-सेना को
बड़े जोर से ललकारते है)

प्रताप—वीरो ! इन तोपों की भीषण अग्नि-वर्षा में कब तक व्यर्थ ही अपने अमूल्य प्राणों की आहुति देते रहोगे ? जाओ, इनका मुँह एकदम बंद कर दो ।

(सब राजपूत 'जय, राणा प्रतापसिंह की जय' इस प्रकार चिल्लाते हुए
एकदम तोपों का मुँह बंद करने के लिए आगे बढ़ते
है, और तोपो का मुँह बंद कर देते हैं । हजारो
हताहत हो जाते है)

प्रताप—(चेतक पर सवार हुए इधर उधर देखते हुए) पता नहीं, वह अभिमानी मानसिंह कहाँ है ! कदाचित् मुझे मिल जाय, तो उसे आज देश-द्रोह करने का फल चखा दूँ ! (सामने देखकर) अहा ! ये मानसिंह और सलीम दोनों हाथी पर सवार हुए इधर ही चले आ रहे हैं ! मानी मानसिंह के मान को चूर करने का इससे सुंदर अवसर फिर हाथ न लगेगा ! मैं इस सुवर्ण-संयोग को हाथ से न जाने दूँगा !

(इतने में मानसिंह और सलीम दोनों राणा प्रताप के ठीक सामने आ पहुँचते है । राणा प्रताप चेतक को ऐसी एड़ लगाते है कि वह तुरंत ही हाथी के मस्तक पर अपने पैर जमा देता है)

प्रताप—(क्रोध के आवेश मे भाला तानते हुए) ओ राजपूत-कुल-कलंक ! माता के कपूत ! अभिमान के पुतले ! अपनी बहन और बहू-बेटियों को म्लेच्छों की अंकशायिनी बनाने मे कुशल राजपूतों के सिरताज ! नारकीय कीड़े ! सँभल, आज तेरे पापों के प्रायश्चित्त का दिन है । तुझे अभी यम-लोक भेजे देता हूँ ।

(यह कहते ही बड़े जोर से भाले का प्रहार करते हैं । महावत मरकर एकदम भूमि पर गिर पड़ता है और हौदा फट जाता है। मानसिंह को उसका हाथी बचा कर भाग जाता है)

प्रताप—(क्रोध मे भरा हुआ) जा, पापी ! नीच ! तू बच गया ! तेरे भाग्य अच्छे थे ! संसार जानता है कि प्रताप का वार कभी व्यर्थ नहीं जाता ! जा, तेरी बला महावत पर टल गई ! और सलीम ! तू भी बादशाह का चिह्न-स्वरूप होकर यहाँ आया था !

जा, तू भी भागकर बच गया ! नहीं तो बादशाह का चिह्न ही मिट जाता।

(प्रताप इस प्रकार कह ही रहे थे कि यवन-सेना एकाएक आकर चारो ओर से उन्हे घेर लेती है। राणा के अंग-रक्षक बड़ी तत्परता से उनकी रक्षा करते हैं। झालापति पन्ना जी भी वही आ पहुँचते हैं)

झालापति—महाराज ! आप अपना मुकुट मुझे दे दीजिए। देखिए, यवनों के झुंड के झुंड 'अल्ला हो अकबर, अल्ला हो अकबर' चिल्ला कर सीधे आपकी ओर ही चले आ रहे है ! आपका सारा शरीर लोहूलुहान हो रहा है ! आपकी बाई टाँग से यह रक्त का फव्वारा छूट रहा है ! मालूम होता है कि आपकी टाँग मे गोली लगी है ! फिर भी आप उन्मत्तों की तरह युद्ध कर रहे है ! आप अपने प्राणों की रक्षा कीजिएगा, राणा जी ! (इधर उधर देखकर) ओह ! देखिए, वह महावतख़ाँ भी सीधा आपको निशाना बनाए कितने जोर से भागा आ रहा है ! (फिर कुछ दूरी पर देखकर) और देखो, वह सलीम और मानसिंह भी दूसरे हाथी पर सवार होकर बड़े वेग से इधर ही आ रहे हैं ! मुग़लों की असंख्य सेना आपको लक्ष्य करके चारों ओर से 'मार लो, काफ़िर प्रताप को, मार लो, काफ़िर प्रताप को, देखो, बचकर न भाग जाय' इस तरह चिल्लाती हुई चली आ रही है ! कृपया शीघ्र ही अपने छत्र, चामर और मुकुट मुझे दे दीजिए।

प्रताप—झालापति जी ! मैं प्राणों के रहते कभी भी युद्ध से विमुख नही हो सकता। सौभाग्य से ही मुझे मोक्ष-प्राप्ति का यह शुभ अवसर मिला है। आप मुझे इससे क्यों वंचित रखना चाहते है ?

झालापति—नही, महाराज! मैं आपको मोक्ष से वंचित नही रखना चाहता! आप जैसे महापुरुष भी यदि मोक्ष के भागी नही होंगे, तो कौन होगा! किंतु मै तो आपसे युद्ध-भूमि छोड़ने के लिए इसलिए कह रहा हूँ कि आप रहेगे तो फिर से सैनिकों की सृष्टि कर लेगे। आप मातृ-भूमि के ललाट-बिंदु है! आपके विना उसकी बडी दीन-हीन दशा हो जायगी। इसलिए आप हठ न कीजिए। अपने राज-चिह्न मुझे दे दीजिए, मै उनका भिखारी हूँ। आशा है, आप भिखारी की इच्छा पूर्ण करेगे। आपने कभी भी किसी भिखारी को नही ठुकराया है, मेरे राणा!

प्रताप—झालापति जी! आप राज-चिह्न ही केवल चाहते हैं, तो (राज-चिह्नो को देते हुए) ये लीजिए, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं। मै तो आज अपने देश, धर्म और जाति की रक्षा के लिए, एक साधारण सिपाही की तरह लडकर, रण-भूमि मे शत्रुओं के सिर काटते हुए, प्राणों की बलि चढ़ाने आया हूँ! कोई लेने वाला न मिले, तो दूसरी बात है!

(यह कहकर संपूर्ण राज-चिह्न उतार कर दे देते हैं। झालापति भी यह देखकर कि महाराणा किसी प्रकार भी युद्ध-भूमि छोड़ने के लिए तैयार नहीं, झट से उनके घोड़े की पूँछ काट देते है, जिससे कि चेतक उन्हें लेकर भाग पड़ता है)

प्रताप—(घोड़े को पूरे जोर से रोकता हुआ) चेतक! प्यारे चेतक! यह क्या कर रहे हो? रुको, रुको, अपने स्वामी की आज्ञा मानो (दुखी होकर) मुझे पता नही था कि तुम बागी हो गए हो! अन्यथा मैं आज दूसरे ही घोड़े पर आता!

(चेतक तीर की तरह यवन-सेना को चीरता हुआ बराबर भागा चला जा रहा है। राणा प्रताप एक हाथ से घोड़े का लगाम खींच रहे है और दूसरे से भाले का प्रहार करते जा रहे हैं। पन्ना जी को राज-चिह्न धारण किए हुए देखकर सारी मुगलसेना उन्हीं पर टूट पड़ती है। प्रताप की ओर किसी का ध्यान भी नही जाता। पर दो मुगल उन्हे देख लेते हैं और उनका पीछा करते हैं। शक्तसिंह यह सारा दृश्य पहाड़ की चोटी पर से देख रहे हैं)

शक्तसिंह—कितना विचित्र दृश्य है ! कितना भीषण रण-ताडव है ! हजारों नर-मुंड भूमि पर पड़े थिरक रहे है ! सहस्रों धड़ छटपटा रहे है ! घोड़े हिनहिना रहे हैं, हाथी चिंघाड़ रहे है ! चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है ! (गौर से देखकर) ओह ! वीर झालापति राज-चिह्न धारण किए हुए मुगलों के साथ समर मे जूझ रहे है ! अपने स्वामी के प्राण बचाने के लिए ही इन्होंने अपने ऊपर विपत्ति मोल ली है ! अरे ! ये तो गिर भी पड़े ! झालापति ! तुम धन्य हो ! तुमने बाजी मार ली है ! कितने ही कीर्तिशालियों की कीर्ति को तुमने फीका कर दिया है ! अभागे शक्तसिह ! तू यह क्या देख रहा है ? कहाँ तू और कहाँ झालापति ! तू भैया का सगा भाई होकर भी उनके काम नहीं आया ! उलटा झूठे अभिमान की ठेस पाकर उनके प्राणों का गाहक बन बैठा ! और इसी लिए शत्रु-दल मे आ मिला है ! यदि तू अपने पापों का प्रायश्चित्त करना चाहता है तो कर ले, अभी समय है। ओ पापी शक्त ! देख, तूने अभी देखा है कि दो मुगल हताहत भैया का पीछा कर रहे हैं ! चल, तू भी चलकर उन दो क्रूर राक्षसों से उनके प्राणों की रक्षा करके अपने पापों का बोझ कुछ

हलका कर ले ! सुबह का भूला यदि शाम तक भी घर लौट आता है, तो भूला नहीं समझा जाता ! (दोनों हाथ जोडकर आकाश की ओर देखकर) प्रभो ! बस ! बहुत हो चुकी ! आज तुम्हारी दया से झालापति ने मुझे आत्म-ज्योति प्रदान की है ! मेरी आत्मा घोर अंधकार से आच्छादित थी ! आज झालापति ने उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ! भूले-भटके को मार्ग दिखा दिया ! आज मैं अपने उस पवित्र भैया—नहीं, नहीं—उस अपने आराध्य देव से मिलूँगा। जीव आत्म-दर्शन के बाद ब्रह्म से मिलेगा, अवश्य मिलेगा !

(एकदम पर्वत-शिखर से उतरकर उन दो मुगलों के पीछे-पीछे हो लेता है)

पट-परिवर्तन

सातवाँ दृश्य

स्थान—हल्दी घाटी के समीप एक नाला

समय—संध्या

(प्रताप अपने घोड़े के समीप विषण्ण-भाव से खडे हुए है)

प्रताप—चेतक ! प्यारे चेतक ! ओ मेरे सुख-दुःख के साथी मूक प्राणी ! तुम यह कैसी अपरिचित-सी साँस ले रहे हो ? ((पूँछ की ओर देखकर) ओह ! यह तो तुम्हारी पूँछ से रक्त की धारा बह रही है ! न जाने, किस घातक ने तुम पर यह आघात किया है ! (कुछ सोचकर दुःखपूर्वक) ओह ! संभव है, झालापति पन्ना जी ने मुझे रण से विरत करने के लिए ही, अन्य उपाय न देखकर, तुम्हारी पूँछ काट दी हो ! झालापति ! तुमने यह क्या किया ? संसार दोषों पर जल्दी दृष्टि डालता है ! लोग कहेंगे कि प्रताप रण-भूमि छोड़कर भाग गया ! मैं इस लोकापवाद को कैसे सहूँगा ! (घोड़े की टॉग की ओर देखकर)

ओ हो ! चेतक ! यह तो तुम्हारी दाहिनी टाँग भी टूट गई है ! मालूम होता है कि किसी विधर्मी की गोली से इसकी हड्डी टूट गई है ! धन्य है तुम्हे, मेरे प्यारे चेतक ! धन्य है ! तुमने दो-दो प्राण-घातक चोटों को झेलते हुए मेरे प्राण बचाए है ! मै तुम्हारे इस ऋण से कैसे उऋण हूँगा ? अच्छा होता, यदि हम दोनों युद्ध-भूमि मे साथ ही मरते । (चेतक मर जाता है)

(प्रताप उसके मृतक शरीर पर सिर रखकर 'हाय ! प्यारे चेतक ! तुम मुझे अकेला छोड़ चले !' यह कहकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ते है)

(तलवार हाथ में लिए हुए घोड़ों पर सवार खुरासानपति और मुलतानपति का प्रवेश)

खुरा०—वह देखो, नाले के उस किनारे पर प्रतापसिंह पडा हुआ है । मालूम पड़ता है, इसका घोड़ा मर गया है । मार लो, इसे जल्दी ही मार लो ।

मुल०—किसे मार लो ? क्या मुर्दे को मारोगे ?

(प्रताप अचानक सचेत हो उठ बैठते है)

प्रताप—यह मारने का-सा शब्द कहाँ से आया है !

खुरा०—मार लो, मार लो, यह तो अभी जिंदा है । देखो, बचकर न भागने पाय !

मुल०—हाँ हाँ, जल्दी करो, जल्दी, बचकर कहाँ जायगा !

(दोनों नाला कूदने के लिए घोड़ो को एड़ लगाते हैं, किंतु घोड़े अड़ जाते है)

प्रताप—(तलवार तानकर) आओ, आओ; वहीं क्यों रुक गए ? अभी लड़ाई समाप्त नहीं हुई । आओ, युद्ध करो ।

खुरा०—हाँ हाँ, घबराता क्यों है ? अभी आए, काफ़िर ! अभी आए ।

मुल०—पकड़ लो, बाँध लो काफ़िर को ।

(फिर दोनो घोड़ो को एड़ लगाते है । अब की बार भी घोड़े अड़ जाते है)

(सहसा शक्तसिंह का प्रवेश)

शक्तसिंह—(जोर से चिल्लाकर) कायरो ! थके-माँदे असहाय प्राणी पर वार करना कहाँ की बहादुरी है ? अगर सच्चे बहादुर हो तो आओ, मुझ से लड़ो ।

खुरा०—आ, काफ़िर ! पहले तू ही आ ।

मुल०—अच्छा, काफ़िर ! पहले तू ही मर ।

(दोनों शक्तसिंह पर एक साथ वार करते है, शक्तसिंह पैतरा बदलकर वार बचा जाते है और अति तीव्र वेग से दोनों पर आक्रमण करते है, दोनो मुगल मर जाते है)

शक्तसिंह—(गद्गद स्वर मे) भैया ! भैया ! (इस प्रकार कहकर घोड़े से उतरकर प्रताप की ओर दौड़ता है)

प्रताप—(शक्तसिंह की ओर देखता हुआ) कौन, कौन ? मुझे यह 'भैया' कहकर पुकारने वाला कौन है ? (ग़ौर से देखकर, स्वगत) अहो ! यह तो शक्तसिंह की-सी आवाज वाला कोई व्यक्ति है !

शक्तसिंह—(दौड़ता हुआ फिर उसी स्वर में) भैया ! मेरे प्यारे भैया !

प्रताप—(एकटक उसी ओर देखता हुआ, स्वगत) केवल आवाज ही नहीं, यह तो सूरत भी शक्तसिह से मिलती-जुलती

है ! पर उसके इस प्रकार यहाँ आने का और इन दोनों मुगलों को मारने का क्या कारण हो सकता है ! (शकुन प्रकट करके, प्रकट) अहो ! आज मेरी यह दाहनी बाँह क्यों फड़क रही है !

शक्तसिंह—चिंता न करो, भैया ! यह चिरकाल से बिछुड़े हुए अपने छोटे भाई शक्तसिंह से मिलने के लिए उत्कंठित हो रही है !

(झटपट नाले मे कूद तैर कर पार हो जाता है)

प्रताप—शक्तसिंह ! यह आज मैं क्या देख रहा हूँ ? कहीं मेरी आँखे मुझे धोखा तो नही दे रही ? क्या तुम सचमुच शक्तसिंह हो ?

शक्तसिंह—हाँ, भैया ! मैं सचमुच शक्तसिंह हूँ । मुझे क्षमा करो । (यह कहकर सहसा चरणों में गिर पड़ता है)

प्रताप—(शक्तसिंह को गले लगाकर करुण एवं क्षीण-स्वर मे) भैया शक्त ! यह आज कैसा स्वप्न दिखा रहे हो ? जिस बात की मुझे त्रिकाल मे भी संभावना नहीं थी, वह आज मै पूरी हुई देख रहा हूँ ! इसका क्या कारण है ?

शक्तसिंह—इसका कारण न पूछो, भैया ! इस पापी से इसका कारण मत पूछो । आज मैंने युद्ध मे आपके लिए उन्हे प्राण देते देखा है, जिनका आपके साथ सिवाय सजातीय होने के और कोई संबंध नहीं था । झालापति पन्ना जी के राज-मुकुट धारण करते ही मेरे मन की गति फिरने लगी थी और जब मैंने उन्हे इन फूटी आँखों से आपके लिए युद्ध मे मुगलों के हाथों मरते देखा, तो मेरा मन एकदम फिर गया ।

प्रताप—(शक्तसिंह से अलग होकर 'हाय ! झालापति पन्ना जी !' इस प्रकार विलाप करते हुए अचेत हो जाते है)

शक्तसिंह—अहो! भैया मूर्च्छित हो गए! मैंने झालापति की चर्चा छेड़के सचमुच बुरा किया। अच्छा, नाले से पानी लिए आता हूँ।

(झटपट जाकर नाले से पानी लाकर प्रताप के मुँह में डालता है और ऊपर छिड़कता है, प्रताप अचानक सचेत हो सिर नीचा करके बैठ जाते हैं)

शक्तसिंह—भैया! इस अपराध के लिए मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ। मैंने बड़ी अविचारशीलता का काम किया। आशा है, आप छोटा समझकर क्षमा करेंगे।

प्रताप—भैया! शक्त! तुमने संकट के समय मेरी सहायता की है। मैं इतना थका हुआ था कि संभव है, वे दोनों मुगल मुझे मार डालते। तुम मेरे प्राण-रक्षक हो। मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। ऋणी से क्षमा-याचना कैसी?

शक्तसिंह—भैया! क्यों आप व्यर्थ का तर्क लड़ाकर मुझे लज्जित कर रहे हैं? कृपया, इन सब बातों को छोड़कर और मेरे संपूर्ण पुराने पापमय कृत्यों को भुलाकर, मुझे अपने चरणों में स्थान देने का वचन दीजिए। मैं अपने को कृत-कृत्य समझूँगा।

प्रताप—(दोनों बाँहें फैलाकर) आओ, भैया शक्त! आओ, आओ, एक बार फिर गले मिल लें। चरणों में स्थान देने की बात जाने दो। कौन स्थान देने वाला और कौन स्थान पाने वाला! हम दोनों अभिन्न हैं, एक हैं! आओ, एक बार फिर गले मिलकर इस एकता को प्रमाणित कर दें! भगवान इसका साक्षी होगा।

(दोनों गले मिलते हैं)

शक्तसिंह—भैया! आपने अपने चरणों में स्थान देकर मुझे

कृतार्थ किया है, इसके प्रतिकार-स्वरूप मैं आज से आजन्म आपका, लक्ष्मण के समान, अनुचर बनकर रहूँगा। आज मेरे अज्ञान का पर्दा फ़ाश हो गया। आज मैंने आपके सत्य-स्वरूप को पहचाना है। मुझे आज पता लगा है कि जन्म-भूमि को जननी क्यों कहते हैं और क्यों सच्चे देश-भक्त उसके लिए प्राणों तक की बाजी लगा देते हैं। भला, जहाँ हम जन्म लेते है, जिस पर उत्पन्न हुए अन्न को खाकर हम जीवन धारण करते है, नाना ओषधियों से सुवासित जिसके स्वच्छ वायु-मंडल मे सुख-पूर्वक साँस लेते है और जो हमारे लिए वसुंधरा है, उसका हमारे साथ सिवाय जननी होने के और क्या संबंध हो सकता है ! जननी भी मनुष्य को जन्म देती है, उसे प्यार से पालती है और अपने स्वच्छ क्रोड़ मे उसे सुख से रखती है ! दोनों मे अंतर ही क्या है ? नाथ ! आज शत्रुओं के मध्य आपके भीषण रण-तांडव को देखकर मेरा कलेजा मुँह तक आ गया था। उस समय मैंने सोचा और कुछ गंभीर होकर सोचा कि जिस मातृ-भूमि के लिए ऐसे-ऐसे महापुरुष अपने प्राणों तक का बलिदान करने को तैयार है, उसे मै केवल एक विशाल मृत्पिंड कैसे समझूँ ! सचमुच, मै उस समय सतरह और सत्ताईस के चक्कर मे था ! मै किसी को कुछ समझता ही नही था ! मेरी तिरछी गरदन किसी की मूँछे ऊपर को नहीं देख सकती थी ! किसी की बात नही सह सकती थी ! बात केवल एक ही अच्छी थी कि मै अविवाहित था, मेरे पत्नी नही थी ! नही तो न जाने मै हिंसक पशु के समान कितनों का खून कर डालता ! उसके एक-एक इशारे पर प्रलय मचा देता ! और मेरे हाथ मे यदि कोई अधिकार होता, तो मेरी नादिरशाही का फिर तो कोई ठिकाना ही न रहता ! किंतु परमात्मा ने गंजे

को नाखून ही नहीं दिए थे ! लोगों के सिर से बला टल गई ! आख़िर मुझे अब होश आई है, जब कि इस पवित्र मेवाड-भूमि पर कुटिल विदेशियों का झंडा फहराने लगा है ! शत्रु लोग चारों ओर से इसे नोचने-खसोटने लगे हैं ! अच्छा, यह भी ग़नीमत है ! जब होश आई, तभी सही । भैया ! मैं प्रण करता हूँ कि मै आगे से ऐसी भूल कभी न करूँगा और आज यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं पर-तंत्र मेवाड़ मे कभी विवाह न करूँगा । और एक बार फिर कहे देता हूँ कि लक्ष्मण के समान आपका सदा अनुगामी बनकर रहूँगा और मातृ-भूमि-रूपी सीता को शत्रु के चंगुल से छुड़वाकर ही साँस लूँगा । नही तो रण-भूमि मे ही लड़ते-लड़ते प्राण-विसर्जन कर दूँगा । अच्छा, भैया ! अब देर हो रही है । सलीम व्यर्थ ही शक करेगा । मैं शीघ्र ही अवसर पाकर आपके दर्शन करूँगा । यह मैं आपके लिए अपना घोड़ा छोड़े जाता हूँ । मै इन दोनों म्लेच्छों मे से किसी का ले लूँगा ।

प्रताप—अच्छा भाई ! जाओ । परमात्मा तुम्हारे उद्देश्य को पूर्ण करे ।

(दोनों गले मिलते है)

(प्रस्थान)

पटाक्षेप

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—आगरा, राज-सभा

(मानसिंह, पृथ्वीराज, रायसिंह और टोडरमल आदि राजा लोग, एक ओर बैठे हुए, परस्पर बातचीत कर रहे हैं)

मानसिंह—(पृथ्वीराज की ओर देखकर) क्यों कवि जी ! आप सिर नीचा किए यों उदासीन-से क्यों बैठे हुए हैं ? कुछ कविता ही सुना दीजिए।

पृथ्वीराज—(धीरे से सिर उठाकर व्यंग्यपूर्वक) आप लोग अपने सम्राट् के प्रति अपूर्व श्रद्धा-भक्ति का परिचय देकर आनंद से दिन-कटी करते रहिए। आपको कविता से क्या मतलब ?

टोडरमल—(मुसकराता हुआ रायसिंह की तरफ आँख मारता है)

मानसिंह—आप ही बताइए कवि जी ! हमारे सम्राट्-ऐसा महामहिमशाली अन्य राजा है ही कौन, जिसके प्रति हम अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करें ? हमारे सम्राट् अत्यंत सहृदय हैं। क्या

हिंदू और क्या यवन—सब को एक दृष्टि से देखते हैं। भारत का यह परम सौभाग्य है कि उसे ऐसे समदर्शी सम्राट् मिले हैं। सूर्य जैसे वृष्टि के द्वारा सहस्रगुण देने के लिए ही रस ग्रहण करता है, इसी प्रकार हमारे राजराजेश्वर प्रजा के कल्याण के लिए ही उससे कर ग्रहण करते हैं। इसी लिए सारी प्रजा उनसे प्रसन्न है। वे न्यायशील और दयालु है। अपने वैभव पर उन्हे तनिक भी गर्व नहीं। सचमुच इस संसार मे सम्राट् अकबर के समान प्रतापी, गुणवान, नीतिज्ञ और चतुर राजा नहीं है।

रायसिंह—राजा साहब! आप बिलकुल ठीक कहते हैं। मै आपकी बात से सोलह आने सहमत हूँ।

पृथ्वीराज—उस जीवन को धिक्कार है, जो पराधीनता के सुख से मुक्त हो! पराधीनता का सुख सचमुच बड़े भाग्य से मिलता है! पराधीनता तो देवों के लिए भी दुर्लभ है! आप लोगों के अहो-भाग्य हैं कि आप लोग पराधीनता का आनंद लूट रहे हैं! धन्य है, आप लोगों को!

मानसिंह—इस प्रकार व्यंग्य कसने से कोई प्रयोजन सिद्ध नही होगा, कवि जी! कृपया आप ही बताइएगा कि—जो देश सैकड़ों राज्यों में बँटा हुआ हो और जिसका निवासी प्रत्येक प्राणी एक दूसरे को नीची निगाह से देखता हो, उसकी उन्नति कब संभव है। स्वार्थी लोगों ने धर्म-शास्त्रों तक को भ्रष्ट कर डाला है। उनमे भी अपने मतलब की बातें घुसेड़ दी हैं। भला, आपा मनाने वाले मनहूस लोगों से खचाखच भरा हुआ देश कभी सुदिन देखने का पात्र हो सकता है? कभी नही। आप सच मानिए, मैं दिल से चाहता हूँ कि भारत का कोई एक सम्राट् हो, किंतु मुझे राजपूतों मे ऐसा कोई भी पुरुष नजर नही आता, जो भारत के सूखे कंकाल

मे फिर से जान फूँककर उसे हरा-भरा कर दे और उसका एकच्छत्र शासन कर सके। राजराजेश्वर अकबर ही ऐसे कुशल व्यक्ति हैं, जो समस्त देश की बागडोर अपने हाथों मे सँभाल सकते हैं और सँभाले हुए है।

पृथ्वीराज—राजा साहब ! आप कैसी बाते कर रहे हैं ? आप क्षत्रिय हैं। आप जब अपनी मातृ-भूमि का ही विदेशियों से त्राण नहीं कर सकते, तो आप क्षत्रियत्व के अधिकारी कैसे बन सकते है ? मैने माना कि यहाँ का प्रत्येक प्राणी एक दूसरे को नीची निगाह से देखता है और मै तो यहाँ तक कहने का साहस करूँगा कि दूसरों की तो बात ही क्या, भाई भाई तक का खून पीने को तैयार बैठा है, परंतु इन सब बातों की ओर से उदासीन होकर यत्न-शून्य हो, शत्रुओं के पैर चूमने मे कहाँ तक पुरुषत्व है, यह आप लोगों को सोचना चाहिए। सच्चे पुरुषों का कर्तव्य है कि वे व्यक्तिगत राग-द्वेष को छोड़कर अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर सदा दृष्टि रक्खे। दूसरों के मुकाबले मे अपने संगठन को ऐसा दृढ़ बनाएँ कि शत्रु लोग हाथ मलते ही रह जायँ। आपका यह कहना कि राजपूतों मे ऐसा कोई पुरुष नही दीख पड़ता, जो भारत के कंकाल मे फिर से जान फूँक सके, सर्वथा अयुक्त है। सीसोदिया-कुल-भूषण महाराणा प्रताप के रहते हुए आपको ऐसी बात कभी मुँह से न निकालनी चाहिए थी। राजा साहब ! क्या आप राणा प्रताप की प्रतिज्ञा को केवल हँसी-मज़ाक ही समझते हैं ?

मानसिंह—क्यों, कवि जी ! यदि प्रताप की प्रतिज्ञा केवल हँसी-मज़ाक न होती, तो हल्दी घाटी के युद्ध मे उन्हे मुँह की क्यों खानी पड़ती ? बेचारे अपना-सा मुँह लेकर मैदान छोड़कर भाग

गए ! भला ऐसे भी व्यक्ति कभी किसी विशाल देश की बागडोर सँभालने के योग्य समझे जा सकते है ?

पृथ्वीराज—राजा साहब ! आप महाराणा प्रताप के साथ यह सरासर अन्याय कर रहे हैं। जानने वाले जानते है कि रण-भूमि छोड़कर वे स्वयं भागे या पूँछ कटा हुआ घोड़ा उन्हे, उनके हजार यत्न करने पर भी, मैदान से लेकर भाग गया ! फिर और कोई यह बात कहता तो कहता, आप तो स्वयं उनके आगे से मैदान छोड़कर भाग आए थे ! कम-से-कम आपको तो यह बात न कहनी चाहिए, राजा साहब !

मानसिंह—(पृथ्वीराज की ओर बड़े जोर से घूरने लगता है)

रायसिंह—भाई पृथ्वीराज ! आपको राजा साहब के प्रति ऐसे वचन कभी न कहने चाहिएँ । आप जिस अवस्था मे यहाँ रहते हैं, आपको उस पर विचार करना चाहिए। (मानसिह से) राजा साहब ! कवि लोग कभी कभी भावुकता के शिकार हो जाते है। आप विचारशील व्यक्ति है । इसलिए भाई पृथ्वीराज की बात पर ध्यान न दीजिए। वे स्वयं ही अपने कहे पर, बाद मे, पछताएँगे।

मानसिंह—(क्रोधपूर्वक) इन्हे प्रताप की शक्ति पर बड़ा गर्व है ! मैं भी मानसिह नहीं, यदि उसे बंदी बनाकर न दिखा दूँ।

पृथ्वीराज—प्रताप को बंदी बनाना बच्चों का खेल नही है, मानसिंह जी ! आप किस भूलभुलैया मे फँसे है ? सूर्य का पश्चिम दिशा मे उदय होना और प्रतापी प्रताप का बंदी होना एक ही बात है ।

मानसिंह—बस, अधिक शेखी न बघारो, पृथ्वीराज ! जो कुछ

होना है, तुम्हारी आँखों के आगे आ जायगा। मैं जल्दी ही उसके वंश के लिए दावाग्नि बनकर धधकूँगा।

पृथ्वीराज—ठीक है, तुम महाराणा के वंश के लिए दावाग्नि बनकर धधकोगे, किंतु याद रक्खो, वे उस दावाग्नि को अपनी तलवार के पानी से सदा के लिए शांत कर देंगे। अपने विशाल सैन्य पर गर्व मत करो, मानसिंह! भला सूर्य की प्रखर किरणों के आगे मेघ-माला कब तक टिक सकती है? वह भले ही मुहूर्तमात्र के लिए उसमें अंतर्हित हो जाय, पर अंत में उसका प्रचंड तेज सघन घन-मंडली को विघटित कर अपने प्रबल पराक्रम का परिचय दिए बिना नहीं रहता।

मानसिंह—तुम-सरीखे लोग सिर्फ गाल बजाना ही जानते हैं। रस्सी जल गई, पर ऐंठन न गई! सम्राट् के बंदी बनकर किसी प्रकार दिन काट रहे हो, फिर भी सम्राट् की राज-सभा में सम्राट् के शत्रु प्रताप की प्रशंसा कर रहे हो। जरा सँभल कर बातें किया करो।

पृथ्वीराज—गाल बजाते हो तुम। कितनी डींगें मारा करते थे कि—मैं प्रताप के घमंड को चूर कर दूँगा, उसे हथकड़ी-बेड़ी पहना कर सम्राट् के संमुख ला उपस्थित करूँगा और उसे सम्राट् को अपनी कन्या देने के लिए बाध्य कर दूँगा! इसी लिए तो तुमने, सारी लज्जा को एक ताक में रखकर, हल्दी घाटी का युद्ध छिड़वाया था! पर उसका परिणाम क्या हुआ, यह तुम्हारा मन जानता है। सम्राट् को भी अब पता लग गया कि तुम कितने वीर हो। रही मेरी बात। मैं सम्राट् के यहाँ बंदी की हैसियत से नहीं, राजकवि की हैसियत् से रहता हूँ। अपमानित होकर नहीं, सम्मानपूर्वक रहता हूँ।

रायसिंह—भाई! इन बातों को छोड़ो। सम्राट् सुनेंगे तो क्या कहेंगे! हमें आपस में ऐसी कोई बात न करनी चाहिए, जिससे सम्राट् अप्रसन्न हों और हमें उसका बुरा फल भुगतना पड़े। राजा साहब! आप समझदार है। आप ही इस अशुभ कथा का अंत करने के लिए चुप हो जाइए और इनके कहने का बुरा न मानिए। क्योंकि कवियों का हृदय देश-भक्ति के रंग मे रँगा हुआ होता है। वे परिस्थिति के प्रतिकूल भी कुछ कहने के लिए बाध्य हो जाते है। ऐसा उनका स्वभाव है।

मानसिंह—नही, मैं इनके कहने का बुरा नहीं मानता, क्योंकि मै अच्छी तरह जानता हूँ कि प्रताप अरावली पर्वत को छोड़ कही अन्यत्र चला गया है। अथवा निराश हो, वन-पर्वतों मे घूमता-फिरता, भूखा भटकता परलोक सिधार गया हो, तो इसमे भी कुछ आश्चर्य नहीं है। आख़िर हमारी फौजों से बचकर वह जा कहाँ सकता था?

पृथ्वीराज—यह समझना आप लोगों की भारी भूल है। आप लोग देखेंगे कि राणा प्रताप कुछ ही दिनों मे अनुकूल समय पाकर अचानक ही हथियार हाथ मे लिए रौद्र-रूप मे आपसे भेंट करेंगे। राणा प्रताप कुछ ही दिनों मे मर मिटने वाले प्राणी नहीं है। राजा साहब! आप क्यों दुःस्वप्न देखा करते है?

मानसिंह—कदाचित् अब की बार मुझे वह युद्ध में मिल जाय तो अवश्य बंदी बनाकर छोड़ूँ! और सूद-सहित बदला चुका लूँ!

(सहसा अकबर का प्रवेश। सब एकदम खड़े होकर सिर झुकाते है)

अकबर—रहने दो, राजा साहब! अधिक बातें न बनाओ। हमने हल्दीघाटी के युद्ध में आपका पराक्रम देख लिया।

(शक्तसिंह के साथ सलीम का प्रवेश। दोनों अकबर को सिर झुकाते हैं)

मानसिंह—किंतु जहाँपनाह ने यह न सुना होगा कि इसमे अपराध किसका है और मुग़ल-सेना की भारी क्षति होने का उत्तरदायित्व किस पर है !

सलीम—(मानसिंह की ओर आँखे फाड़कर देखता है)

मानसिंह—क्यों, शाहजादा साहब ! शाहंशाह क्या कह रहे है, सुना आपने ?

अकबर—क्यों, सलीम ! क्या राजा साहब ठीक कहते है ?

सलीम—हाँ, जहाँपनाह ! मै मानता हूँ कि कुछ ज़ल्दबाजी की वजह से हमारी फौज को ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा, पर··· (कहता कहता चुप हो जाता है)

अकबर—कहो, कहते क्यों नहीं ?

सलीम—(अकबर के कान में धीरे से) राजा साहब भी तो बाल-बाल बचकर मैदान छोडकर भाग आए थे।

मानसिंह—(बड़े ध्यान से सुनता हुआ) और शाहजादा साहब ! आप तब बंदूक चला रहे थे ?

अकबर—अच्छा, हम सब समझ गए। आप लोग अपनी अपनी जगह बैठ जाइए।

(सब यथास्थान बैठ जाते हैं। अकबर भी अपने सिंहासन पर बैठ जाता है)

अकबर—(चारो ओर दृष्टि डालकर) क्यों खुरासान और मुलतान के दोनों राजा कहाँ हैं ? उन दोनों का राज-दरबार में न आने का क्या कारण है ?

सलीम—(शक्तसिंह की ओर उग्र दृष्टि से देखकर) क्यों आप

चुप क्यों बैठे हैं ? जहाँपनाह की बात का जवाब क्यों नहीं देते ?

शक्तसिंह—जहाँपनाह जब मुझ से पूछेंगे, तो मैं उनकी बात का उत्तर ठीक-ठीक दे दूँगा। आप मेरी ओर इस प्रकार क्यों घूर रहे हैं, शाहज़ादा साहब ?

सलीम—देखिएगा, जहाँपनाह ! 'उलटा चोर कोतवाल को डाटे' वाला मामला है ! खुरासान और मुलतान के दोनों राजाओं को जान से मारकर चाहते है कि इनकी ओर कोई देखे तक नही ! आप ही ने इन्हे पनाह दी थी, आप ही इनका फैसला करेंगे, मैंने इसी लिए इनकी बाबत खुद कुछ फैसला नहीं दिया और इन्हे आपके पास ले आया हूँ।

शक्तसिंह—जहाँपनाह ! यह ठीक है कि मैंने ही उन दोनों सेनापतियों को मारा है। किंतु मै वैसा करने को विवश हो गया था।

अकबर—सब बाते साफ़ साफ़ कहिए, आपने ऐसा क्यों किया ?

शक्तसिंह—सुनिएगा, जहाँपनाह ! हल्दी घाटी के युद्ध मे जब मैंने, राजा साहब और शाहजादा साहब दोनों के घायल होकर भाग जाने पर, राणा प्रताप को एकाएक महावतख़ाँ सहित हजारों सैनिकों से घिरा हुआ देखा, तो कुछ ही क्षण बाद मै क्या देखता हूँ कि—झालापति मन्ना जी, स्वयं राज-चिह्न धारण करके, प्राणों को हथेली पर रखकर, मुगल-सेना से जूझ रहे है ! और राणा प्रताप को उनका घोड़ा, जिसकी कि पूँछ से बराबर खून बह रहा था, बड़े वेग से भगाए ले जा रहा है। उसी समय मैंने देखा कि झालापति अपने स्वामी के लिए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर चुके हैं और युद्ध भी प्रायः समाप्त हो चुका है। ऐसे समय पर मैं फिर क्या देखता हूँ कि थके-माँदे राणा प्रताप के पीछे दो घुड़सवारों

ने अपने घोड़ों को तीर की तरह छोड़ रक्खा है। उस समय मैंने सोचा कि—जब झालापति राणा प्रताप के लिए अपने प्राणों की आहुति दे सकता है, तो मै उनका सगा भाई होते हुए क्यों न इस आपत्ति-काल मे उनके काम आऊँ ! यह सोचते ही मैं, एक दम पर्वत-शिखर से उतर, उन दोनों के पीछे हो लिया। और मैंने जोर से पुकार कर कहा कि युद्ध की समाप्ति पर लौट कर जाते हुए थके-माँदे शत्रु पर हमला करना अन्याय है, पाप है। जब उन्होंने मेरी इस बात पर ध्यान न दिया और वे दोनों, वीर प्रताप पर, जिसका कि घोड़ा मर चुका था, हमला करने के लिए तैयार हो गए, तो मैंने उन्हे युद्ध के लिए ललकारा और दोनों को तलवार के घाट उतार दिया। सत्य यह है। अब आपकी इच्छा है, जो चाहे दंड दे सकते है।

अकबर—(स्वगत) इस बेचारे का क्या कसूर है ! मै भी ऐसी हालत मे यही करता, जो इसने किया है। आख़िर खून तो एक ही है ! (प्रकट) मगर यह तो सरासर दग़ाबाज़ी का काम है !

शक्तसिंह—जहाँपनाह क्षमा करे। बुरा न माने तो एक बात कह दूँ !

अकबर—(स्वगत) ऊपर से चाहे मैं कुछ ही ज़ाहिर करूँ, पर मेरा दिल तुमसे बहुत खुश है। (प्रकट) हाँ, कहो।

शक्तसिंह—आप जानते हैं कि आपने दग़ाबाज को ही शरण दी थी ! फिर आपको ऐसा कहने का क्या अधिकार है, जहाँपनाह ?

सलीम—जहाँपनाह ! ये आपके आगे किस तरह बोल रहे हैं !

अकबर—इनका दिमाग़ दुरुस्त नही है। तुम चुप रहो, सलीम !

शक्तसिंह—जहाँपनाह ! यदि मेरा दिमाग़ ठीक होता, तो मैं उन दोनों मुगलों को मारकर उधर से उधर ही भाग सकता था। किंतु मैंने ऐसा करना राजपूती शान के प्रतिकूल समझा। इसी से मैं आपकी सेवा मे न्याय के लिए उपस्थित हुआ हूँ। मै देखना चाहता हूँ कि हिंदू-मुसलमानों को एक दृष्टि से देखने वाले यवन-सम्राट् सचमुच कितने न्याय-परायण है !

अकबर—(स्वगत) यह वही आदमी है, जिसकी लकड़ी ने नौरोज के मेले मे मेरी बेइज्ज़ती की थी ! और यह वही आदमी है, जिससे उस बेइज्ज़ती का बदला लेने की मैंने दिल मे ठान रक्खी थी ! मगर आज इसकी इन बातों को देख-सुनकर मेरा दिल तबदील-सा हुआ जा रहा है ! (प्रकट) वीर राजपूत ! राजनीति का तकाजा तो यही है कि मै तुम्हे फाँसी का हुक्म दूँ। किंतु मै आज धर्म-विरुद्ध राजनीति को तुम्हारे साथ नही बर्तूंगा। तुम अगर न्याय के लिए मेरी सेवा मे आए हो, तो मैं भी तुम्हारे साथ अन्याय न करूँगा। संभव है, मैं भी ऐसी दशा मे यही करता, जैसा कि तुमने किया है। हाँ, मुझमे और तुममे इतना फ़र्क ज़रूर होता कि मैं किसी के पास न्याय के लिए न जाता और उधर से उधर ही अपना रास्ता पकड़ता। परंतु तुमने ऐसा न करके मेरे दिल मे उथल-पुथल मचा दी है। मेरी आत्मा कह रही है कि ऐसे सच्चे बहादुर मौत के नहीं, पूजा के पात्र है। पर ऐसी हालत में मैं तुम्हे अपने यहाँ भी नहीं रख सकता, क्योंकि ऐसा करना राजनीति के बिलकुल खिलाफ़ समझा जायगा और लोग मुझे दोष भी देगे। इसलिए, जाओ, मैं तुम्हे क्षमा

करता हूँ और दुनिया को यह दिखा देना चाहता हूँ कि हम मुगल लोग निरे खून के प्यासे ही नहीं होते, हमारे भी दिल होता है; हम भी गुणों की क़द्र करना जानते हैं और वक्त आने पर विवेक से काम लेते है।

शक्तसिंह—मैं यवन-सम्राट् का अत्यंत अनुगृहीत हूँ।

(अभिवादन करके प्रस्थान)

सब—(अकबर की ओर आश्चर्यमयी दृष्टि से देखते रहते है)

अकबर—मेरी तबीयत बेचैन है। मैं आराम करना चाहता हूँ। आप लोग भी अपने अपने घर जा सकते हैं।

(अकबर के पीछे-पीछे सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

स्थान—अरावली पर्वत

समय—प्रभात

(महाराणा प्रताप एक झरने के किनारे वृक्ष के तले तृणासन पर विराजमान हैं)

प्रताप—हा दुर्दैव! तू यह क्या करा रहा है? चित्तौड पर तो विदेशी विधर्मियों का अधिकार हो ही चुका था, किंतु अब मेरे देखते ही देखते अति रमणीय उदयपुर भी शत्रुओं के हाथ आ गया! और मुझे विवश होकर अरावली-पर्वत को अपना आश्रय-स्थान बनाना पड़ा है! प्रतीत होता है कि आज भारत का भाग्या-काश सघन अंधकार से आच्छन्न हुआ चाहता है! यवनों की

विजय-पताका, इस छोटे-से पर्वतीय प्रदेश को छोड़कर, प्रायः संपूर्ण राजपूताने पर फहराने लगी है। सूर्यवंशी नीच सागर ने विधर्मियों का साथ देकर मेरे हृदय को चलनी बना दिया है। अरे कुलांगार! परलोक मे तेरी क्या गति होगी? सूर्यवंशी होकर विधर्मियों के चरण चूमने मे तुझे कुछ भी लज्जा तथा कुलाभिमान का अनुभव नहीं हुआ! छिः छिः! धिक्कार है तुझे! हत-भाग्य भारत-भूमि! तू ऐसे कुलांगार एवं देश-द्रोही को जन्म न देती तो भला था! (कुछ सोचकर धीरे से) अच्छा, सागर! इसमे तुम्हारा ही क्या दोष है! भारत के सभी क्षत्रियों की यही अवस्था है। न जाने, अकबर ने इन लोगों पर क्या जादू फेरा है! सब के सब अंधे होकर उसके जाल में फँसे जा रहे हैं। किसी को अपने हिंदू-धर्म की सुध-बुध तक नहीं रही। अभागे भारत! तू पहले सब देशों का सिरताज था। अब विदेशियों से पद-दलित होना तुझे क्यों नहीं अखरता? जरा अपने पूर्व गौरव का स्मरण कर! कायरता का गला घोट दे! और स्वातंत्र्य की ज्योति पर प्राण निछावर करना सीख! फिर देखे, कोई भी विदेशी किस प्रकार तुझे पद-दलित करने का साहस करता है! अभागे! भाई को भाई समझ, मित्र को मित्र और शत्रु को शत्रु! बिना ऐसा किए तेरा उद्धार असंभव है। (चिंता-मग्न हो जाते है)

(मंत्री का प्रवेश)

मंत्री—(प्रणामपूर्वक) आज आपकी इस विषण्णता का क्या कारण है, राणा जी? आप इतनी चिंता मे क्यों डूबे हुए हैं? देखता हूँ कि चिंता की भट्टी पर आपका शरीर भीतर ही भीतर जला जा रहा है। मेरी आपसे कर-बद्ध प्रार्थना है कि आप कृपया अपने अमूल्य प्राणों को इस चिंता-जनित अकाल मृत्यु का शिकार

न बनाइएगा। देश की आशा के आप ही एकमात्र केंद्र हैं, कृपया यह न भूलिएगा।

प्रताप—नहीं, मंत्री जी! ऐसी बात नही है। भय, चिंता को तो मैने तभी तिलाञ्जलि दे दी थी, जब कि मैने देशोद्धार का प्रण लिया था। मै तो केवल यही सोच रहा था कि—हमारे इतना यत्न करने पर भी देश परतंत्रता की बेड़ियों मे जकड़ा जा रहा है! और उसमे कारण बने हुए हैं—हमारे अत्यंत निकटवर्ती आत्मीय जन! यह कैसे दुर्भाग्य की बात है! मंत्री जी! मैने अनेक बार मुट्ठी भर सेना लेकर असंख्य शत्रु-सेना के साथ युद्ध किया है। और मैं अब भी यही कहता हूँ कि—यह नितांत असंभव है कि मेरे जीवित रहते विदेशी विधर्मी लोग हमारी जन्म-भूमि मे सुख-चैन की बंसी बजाएँ!

मंत्री—महाराज! मै भली भाँति जानता हूँ कि आप निराश होने वाले व्यक्ति नही हैं। मुझे पता लगा है कि आपके इस दृढ़ विचार से प्रभावित होकर अनेक राजा और सामंतगण शीघ्र ही संगठित होकर विधर्मियों से लोहा लेने के लिए आ रहे है। मैं आपको एक और शुभ समाचार सुनाए देता हूँ। आगामी युद्ध मे भीलराज भी अपने साथी हजारों भीलों के साथ आपकी सहायता करेंगे।

(भीलराज का प्रवेश)

भीलराज—(प्रणामपूर्वक) मंत्री जी! मेरे कुछ बहादुर भील अभी आपकी सेवा में आ रहे हैं, उनके योग्य जो सेवा होगी, वे सदा करने के लिए तत्पर रहेंगे और शेष आवश्यकता पड़ने पर पहुँच जायँगे। (राणा प्रताप की ओर देखकर) क्या ये ही हमारे राणा हैं?

मंत्री—हाँ, ये ही हमारे पूजनीय महाराणा हैं। इन्हीं के

मंत्री—राणा जी ! देश-भक्तों का भविष्य सचमुच बड़ा कंटकाकीर्ण एवं दुःखमय होता है। कभी उन्हे अपने बंधुओं से हाथ धोना पड़ता है और कभी अपनी जीवन-संगिनी और बाल-बच्चों तक से वियुक्त होना पड़ता है। किंतु कर्त्तव्य का ध्यान उन्हे अपने पथ से विचलित नही होने देता। उन्हे ये सब दु.ख झेलने ही पडते हैं। संसार का नियम ही कुछ ऐसा है। इसमे किसी का क्या दोष ! माता-पिता, बंधु-बाधव, स्त्री-मित्र ये सब इस संसार-पथ के पथिक हैं। मार्ग मे ही हमारा और इनका मेल होता है। फिर वे कहीं चले जाते है और हम कही । इसलिए ऐसी बाते सोचकर मन को विचलित होने देना आप-जैसे धीर पुरुषों को नही सुहाता । और फिर जो घटना अभी तक घटी ही नहीं, उसकी पूर्व-चिता कैसी ? महाराज ! राजपूतों मे आप ही केवल शत्रुओं के लिए कालानल के तुल्य हैं। भारत-माता आप ही की ओर एकटक हो करुणाभरी दृष्टि से देख रही है। केवल आप ही मे उसे आशा का प्रतिबिब दिखाई दे रहा है। आशा है, आप अपनी उस पूजनीया परम-देवता को निराश न होने देंगे—उसके आशा-तंतु को निर्दय होकर न झटक देंगे। महाराज ! जिस प्रकार भयंकर दावाग्नि वृक्षों को अपनी विकराल लपटों से भून डालती है, ठीक उसी प्रकार शत्रु-गण आपकी लपलपाती हुई भीषण, असि-ज्वाला में भस्मसात् हो जायँगे । और जैसे मध्याह्न-मार्त्तंड-मंडल अपनी उग्र किरणों से जीव-लोक को उत्तप्त कर 'त्राहि, त्राहि' मचा देता है, वैसे ही आपके निरंतर एवं प्रचंड कुंत-प्रहारों से सारी शत्रु-सेना 'त्राहि, त्राहि' कर उठेगी। आप अपने स्वरूप को न भूलिएगा, राणा जी !

प्रताप—(हँसता-सा हुआ) आपने तो बड़ा लंबा-चौड़ा उपदेश दे डाला, मंत्री जी ! अच्छा, आइए, चलें। बहुत दिन हुए, सागर

के व्यापारों को जानने के लिए चित्तौड़ दूत भेज रक्खा है। देखें, वह समाचार लेकर आया कि नहीं। (भीलराज तथा भीलों से) आप लोग भी चारों ओर जाकर पता लगाएँ कि शत्रु-सेना तो कहीं आस-पास नहीं है।

सब—जो आज्ञा।

(सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

स्थान—अरावली पर्वत, प्रताप की कुटी

(रानी और राजकुमारी का प्रवेश, राजकुमारी इंदुमती रो रही है)

रानी—बेटी इंदुमती! क्यों, रोती क्यों हो?

राजकुमारी—(सिसकती हुई) माँ! जल्दी ही कुछ खाने को दो, बड़ी भूख लगी है।

रानी—बेटी! कुछ देर ठहरो, भोजन हो रहा है।

राजकुमारी—(मारे भूख के व्याकुल हो उठती है और रोते-रोते बेसुध हो जाती है)

रानी—(राजकुमारी की ओर बड़े ध्यान से देखकर आँखो से टपटप आँसू गिराती हुई) ऐं! यह क्या! अरे मेरा तो सर्वस्व लुट गया! जल्दी आओ, प्राणनाथ! जल्दी। तुम कहाँ हो? यह देखो, तुम्हारी इंदु तुमसे सदा के लिए रूठना चाहती है। (झटपट जल-पात्र में से पानी लेकर इंदु के मुँह मे डालती है और उसे बार बार हिलाती-डुलाती है; फिर) हाय! मेरा भाग्य फूट

गया ! यह तो टस से मस नहीं होती ! आँखें पथली जा रही हैं ! जल्दी करो, प्राणेश्वर ! जल्दी करो । (घुटनों के बल खड़ी हो, दोनो हाथ जोड़कर) हे सच्चिदानंद प्रभो ! तुम सत्, चित् और आनंद-रूप हो ! किंतु तुम्हारी यह सृष्टि असत्, अचित् और निरानंद ! यह कैसी विषमता है ! यहाँ चैतन्य का आभास भी अचेतनता से अभिभूत ही दीख पड़ता है ! (फिर सिसकियाँ भरती हुई) प्यारी इंदु ! क्या मुझसे बिलकुल ही रूठ गई ? बेटी ! मुझसे क्या अपराध हुआ ? बताओ, बताती क्यों नही ? (ध्यान से देखकर) अरे ! यह बेचारी तो निश्चेष्ट पड़ी हुई है ! भगवन् ! क्षमा करो, क्षमा करो । यह किन कर्मों का फल भुगता रहे हो ? देवेश ! दया, दया, दया । मुझ अभागिनी पर दया करो करुणा-सागर ! (इस प्रकार विलाप करती-करती अचेत हो जाती है)

(सहसा भीलराज के साथ प्रताप का प्रवेश)

प्रताप—ऐं ! यह क्या ! भीलराज ! जल्दी पानी लाओ ।

(भीलराज जल-पात्र मे से पानी लेकर देता है । प्रताप रानी के मुँह पर जल छिड़कते है और अंचल से हवा करते है, साथ ही भीलराज भी जल-सिंचनादि द्वारा इंदुमती की सेवा करता है । रानी सचेत हो जाती है, किंतु इंदुमती अभी अचेत ही पड़ी है । रानी राणा से लिपटकर फूट-फूट कर रोने लगती है । भीलराज झटपट दौड़कर बाहर से शीघ्र ही कमल-पत्र और एक बूटी उखाड़ कर ले आता है, बूटी को पत्थर पर पीस उसका रस निचोड़ इंदु के मुँह मे डालता है और कमल-पत्र से हवा करता है । सहसा इंदु सचेत हो जाती है)

भीलराज—(एकदम प्रसन्नता से उछल कर) राणा जी ! रानी जी ! अपनी इंदु की तो खबर लो। देखो, आप दोनों की ओर कैसे टुकुर-टुकुर देख रही है !

(राणा और रानी दोनों एक साथ इंदु को गोद मे उठा लेते है और बार-बार उसका सिर चूमते है)

प्रताप—(भीलराज की ओर देखकर करुण-स्वर मे) भीलराज ! मै आजन्म तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हो सकूँगा।

रानी—(भीलराज की ओर स्नेह और कृतज्ञता-भरी दृष्टि से देखती हुई) भीलराज ! मैं किस प्रकार तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करूँ ? (पत्थर पर लगी हुई हरी बूटी की ओर देखकर) भीलराज ! तुम बड़े गुणी हो। तुम धन्य हो ! जंगल की जड़ी-बूटियों से भी तुम्हारा परिचय है ! मुझे दुःख है कि हम तुम्हारे इन उपकारों का बदला न चुका सकेगे। तुम जैसे सच्चे साथियों को पाकर इस कष्टावस्था मे भी हम अपने को धन्य समझते है।

भीलराज—(दोनों हाथ जोड़कर) यह सेवक किस योग्य है, रानी जी ! आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। जब आप लोग अपने देश के लिए सब भोग-विलासों को लात मार कर इस प्रकार बीहड़ वन-पर्वतों की खाक छानते फिरते हैं, तो क्या हमारा इतना भी कर्त्तव्य नहीं कि अपने स्वामी के दुख-दर्द मे उसकी कुछ सेवा करे ? रानी जी ! कृपा करके ऐसी बात अब न कहना। मुझे ऐसी बातें सुनकर हार्दिक दुःख होता है।

रानी—अच्छा, भीलराज ! जैसी तुम्हारी इच्छा। भीलराज ! क्या तुम इस ओषधि का नाम बता सकते हो ?

भीलराज—क्यों नहीं, रानी जी ! इसका नाम 'मूर्च्छाहारिणी' है।

रानी—तुम्हे इसका ज्ञान कैसे हुआ ?

भीलराज—वैसे तो हम जंगली लोग अपनी आवश्यकता के अनुसार सभी जड़ी-बूटियों को जानते हैं, पर इस बूटी का पता मुझे एक महात्मा जी से मिला था। रानी जी ! आप भी इसकी पहचान कर लेना।

प्रताप—भीलराज ! अवकाश के समय यह सब हो जायगा। अब तो शीघ्र ही इंदु की भूख का प्रबंध करना चाहिए। (रानी से) देवी ! जाओ, बहुत जल्दी भोजन तैयार करो। (इंदु से) इंदु ! तुम भी अपनी माता जी के साथ जाओ। (प्रताप इंदुमती को गोदी से उतार देते है)

(रानी और इंदुमती का प्रस्थान)

प्रताप—भीलराज ! दुर्भाग्य से आज यह ऐसी घटना घट गई कि ध्यान आते ही हृदय धड़कने लगता है, कलेजा कॉप जाता है। मै पहाड़ से कूद सकता हूँ। नदी-नालों को लॉघ सकता हूँ। आवश्यकता पड़ने पर हवा मे भी उड़ सकता हूँ। सॉप की तरह कोसों पेट के बल सरपट दौड़ सकता हूँ और शत्रुओं से घिरा हुआ सूर्य-मंडल के समान शत्रु-सेना के घोर तिमिर को तितर-बितर कर सकता हूँ, किंतु···(कुछ सोचकर गहरी सॉस लेकर) बच्चों की दुर्दशा देखकर मेरे प्राण सूखे जाते हैं ! ऑखे पथराई जाती है ! अंग-अंग ढीला पड़ रहा है ! और ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कुटिल काल, अपना विकराल मुँह बाए, सामने खड़ा हुआ, मुझे मरने का अभ्यास करा रहा हो ! (चिंता-निमग्न हो जाता है)

भीलराज—महाराज ! मैं तुच्छ सेवक सूर्य को दीपक दिखाने का दुःसाहस कैसे कर सकता हूँ ! फिर भी आप जो कुछ कर

रहे हैं, वह आप-जैसे मातृ-भूमि के एकमात्र रक्षक को नहीं सुहाता। स्वदेश की बलि-वेदी पर वीर पुरुष को सभी कुछ निछावर कर देना पड़ता है। देश-भक्ति की भभकती अग्नि मे उसे संपूर्ण कोमल भावों की आहुति दे देनी होती है। महाराज ! शोक न कीजिए। जरा अपने पूर्वजों की ओर दृष्टि डालिएगा। प्रातःस्मरणीय श्रीरामचंद्र जी महाराज चौदह साल तक वन-वन मे भटकते फिरे। उनकी सती साध्वी धर्मपत्नी का अपहरण हुआ। दुष्ट रावण के चंगुल से उसे छुड़ाने मे उन्हे कितना पुरुषार्थ करना पड़ा ! और फिर कुछ ही दिनों बाद लोकापवाद के डर से अथवा अपनी प्रजा के चरित्र-निर्माण के नाम पर उस निरपराधिनी को छोड़ दिया गया ! क्या संसार के इतिहास मे ऐसी करुण कहानी कहीं अन्यत्र भी मिल सकती है ? और अकारण ही न जाने कितने वर्षों का वनवास भोगकर और अनेक यंत्रणाएँ सहने के बाद पांडवों को राज्य मिलने के पहले उनका अभिमन्यु उनसे सदा के लिए छीन लिया गया था ! यह सब संसार की गति-विधि है। इस पर किसका बस चलता है ! इसलिए शोक न कीजिएगा। महाराज ! महापुरुषों का कुटुंब बड़ा विस्तृत होता है। हम सेवकों को भी आप अपने सुख-दुःख का साथी अथवा कुटुंबी समझिएगा।

(यह कहकर चरणो में झुक जाता है)

(सहसा नेपथ्य मे)

माँ ! जल्दी दौड़ो, जल्दी। वन-बिलाव मेरी रोटी छीनकर ले गया। (चिंघाड़ पाड़कर रोती है)

प्रताप—(चौक कर नेपथ्य की ओर देखने लगते है)

(फिर नेपथ्य में)

बेटी ! रोओ मत, मत रोओ। तुम्हारा यह कष्ट मुझसे नहीं सहा जाता। देखो, अपनी इस हत-भागिनी माता का तो कुछ ख़याल करो। रोओ नहीं, प्यारी इंदु ! मत रोओ। मेरा कलेजा निकला जाता है।

प्रताप—भीलराज ! कितने यत्न से इंदु की प्राण-रक्षा कर सके थे ! अब फिर बेचारी पर यह विपत्ति ! (स्वगत) बच्ची ! मत रोओ, प्यारी बच्ची ! तुम्हारा भाग्य कठोर है।

(इंदुमती को गोद मे लेकर पुचकारती हुई रानी का प्रवेश)

प्रताप—(इंदुमती को एकदम गोद में लेकर) कहो, बेटी ! क्या हुआ ? क्यों रो रही हो ? (यह कहकर इंदुमती के आँसू पोंछता है)

इंदुमती—(सिसक-सिसक कर रोती हुई) पिता जी ! वन-बिलाव…… (कंठावरोध; फिर कुछ क्षण बाद) पिता जी ! वन-बिलाव मेरी रोटी……(फिर कंठावरोध, दो-तीन क्षण बाद) पिता जी ! वन-बिलाव मेरी रोटी छीनकर ले गया।

प्रताप—रोओ नहीं, पुत्री ! मै अभी तुम्हारे लिए फल मँगाए देता हूँ। (भीलराज से एक ओर को) भीलराज ! इस सूखे पर्वत पर कोई फल भी तो ढूँढे नहीं मिलेगा। फिर भी जो कुछ भी मिले, इंदु के लिए ले आओ।

भीलराज—जो आज्ञा। अभी लीजिएगा।

प्रताप—भीलराज ! बहुत जल्दी लौटना। इंदु बहुत भूखी है।

(भीलराज का शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान)

प्रताप—(स्वगत) हृदय ! अब धीरज धर। इन सुकुमार भावों को एक ओर रख दे। अब तो प्राणों की बाजी है। देखें, ऊँट किस करवट बैठता है ! जननी जन्म-भूमि की रक्षा के लिए अभी

न जाने हमें कितना पुरुषार्थ करना है ! कितने ही दुःख क्यों न भोगने पड़ें, कितनी ही यंत्रणाएँ क्यों न झेलनी पड़ें, शत्रु के आगे झुकना महा-पाप है ! चाहे सर्वस्व स्वाहा हो जाय, विदेशियों को देश से निकाल कर ही दम लेंगे ! यह ठीक है, हम सासारिक परिभाषा मे साधनहीन है, असहाय हैं, दुर्बल हैं, किंतु साहसी पुरुषों की परमात्मा सदा सहायता करता है, उन्हे बल-बुद्धि एवं धैर्य प्रदान करता है, जिनके द्वारा वे मार्ग के कंटकों को—झाड-झंखाड़ों को—उखाड़ते हुए अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर अविराम गति से बढ़ते चले जाते हैं ! दुरात्मा यवन ! क्षत्रियों से लोहा लेना कोई हँसी-खेल नही है !

रानी—(घबराकर झटपट इंदुमती को अपनी गोद मे लेती हुई) नाथ ! आप किस विचार मे मग्न हो गए ? देखो, इंदुमती की विकलता फिर बढ़ने लगी ! यह देखो, इसकी तो फिर आँखे मिची जाती हैं !

इंदुमती—(यत्न से आँख खोलती हुई) हाय ! पिता जी ! कुछ खाने को दो।

प्रताप—बेटी ! धीरज धर। भीलराज अभी तुम्हारे लिए फल लिए आते हैं। (स्वगत) मैं कितना कोमल भावों पर विजय पाना चाहता हूँ ! परंतु, बच्चों का करुण-विलाप मेरी हृदय-वीणा को बलात् टूक-टूक किए डालता है ! न जाने, ईश्वर को क्या अभीष्ट है !

(भीलराज का कुछ बेर हाथ मे लिए हुए प्रवेश)

भीलराज—(देता हुआ) लो, राजकुमारी ! ये चार बेर हैं, इन्हें खाकर ऊपर से पानी पी लो। कल से सब प्रबंध हो जायगा।

ज्वार, मटर, कँगनी, समक आदि बहुत तरह के अन्न इकट्ठे कर ला दूँगा। आप अधीर न हों।

इदुमती—(झटपट बेर खाकर और पानी पीकर) भीलराज ! ये ज्वार, मटर, कँगनी आदि कैसी चीजे होती हैं ?

भीलराज—राजकुमारी ! तुम इन चीजों को क्या जानो ! ये चीजे तो हम गँवार जंगली लोगों के खाने की हैं, परंतु आज मेवाड़ की राजकुमारी को भी··· (रो पड़ता है; कुछ सँभलकर गद्गद स्वर में) आज मेवाड़ की राजकुमारी को भी इनसे पाला पड़ा है ! ईश्वर ! ईश्वर ! अच्छा, तुम्हारी इच्छा। तुम्हारी लीला अपरंपार है।

प्रताप—भाई भीलराज ! बस, अधिक दुखी मत होओ। तुम तो हमे ही धीरज बँधा रहे थे। उलटे तुम्हीं बालकों की तरह रोने लगे !

भीलराज—क्षमा कीजिएगा, महाराज ! इस धृष्टता के लिए क्षमा कीजिएगा।

प्रताप—(स्वगत) आज, न जाने क्यों, मेरे मन मे भाँति भाँति के विचार तरंगित हो रहे हैं। दुष्ट सागर ! तूने क्षत्रिय-कुल को तो कलंकित किया ही है, अभी पता नही, तू और क्या २ करने पर तुला हुआ है। (प्रकट) देवी ! तुम इंदु के साथ जाकर विश्राम करो। कल से सब ठीक हो जायगा।

रानी—जो आज्ञा।

(इंदुमती-सहित रानी का प्रस्थान)

प्रताप—भीलराज ! आज सावधान होकर भीलों के साथ शिविर की रक्षा करना। जाओ।

भीलराज—महाराज की आज्ञा सिर-माथे।

(प्रस्थान)

प्रताप—(विचारपूर्वक) भीलराज भी कितना गुणी पुरुष है। इसने आज इंदु की जान बचा ली। इसके ऋण से मुक्त होने की एक और चिंता ने मुझे आ घेरा।

(सोचते-सोचते प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

चौथा दृश्य

स्थान—अरावली पर्वत, राणा का वास-स्थान

(दासी-सहित रानी और राजकुमारी का प्रवेश)

(सहसा नेपथ्य मे बहुत धीमे स्वर में)

यार! पता तो लगाओ कि प्रताप घर पर है या नही?

रानी—(कान लगाकर धीरे से) दासी! ये कौन लोग है, जो इस प्रकार चुपके-चुपके बातचीत कर रहे हैं?

(फिर नेपथ्य में)

अजी! प्रताप को घर पर टिकने की कब फुरसत मिलती है। वह जरूर किसी धुन में कहीं बाहर गया होगा।

दासी—रानी जी! कुछ दाल मे काला मालूम देता है।

(फिर नेपथ्य में)

यार! घबराते क्यों हो? जल्दी करो। रानी और राजकुमारी को पकड़कर जल्दी ही सागर जी के हवाले करें। देर हो जाने पर कोई न कोई आ जायगा और हमारा यहाँ से निकलना मुश्किल हो जायगा। यह तो हमारी खुशकिस्मती है कि प्रताप यहाँ नहीं

मालूम देता। आओ, चलो, जल्दी अंदर चलें।

रानी—(दासी के कान मे धीरे से) ये तो नीच यवन प्रतीत होते हैं, जो हमें पकड़ने का विचार रखते हैं। (इंदुमती से) पुत्री ! भीतर से शीघ्र मेरी तलवार ले आओ।

(एक ओर से इंदुमती का प्रस्थान। दूसरी ओर से कुछ यवन सैनिकों का प्रवेश। सब इधर उधर देखते हैं)

दासी—(कड़क कर) अरे ! कौन लोग हो तुम ? तुम यहाँ क्यों आए हो ? तुम नहीं जानते कि यहाँ हमारी महारानी रहती है ? इस जनानखाने में तुम्हारे यहाँ आने का क्या मतलब है ? भाग जाओ यहाँ से। महाराणा जी आ गए तो तुम्हारे अभी टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।

सैनिकगण—(इधर उधर देखकर गुर्राते हुए) क्या, क्या ?

दासी—क्या, क्या के बच्चो ! निकल जाओ यहाँ से।

पहला—(विकट हँसी हँसकर) हम यहाँ भागने के लिए आए हैं ? देख, हम अभी रानी को पकड़कर सागर जी के पास लिए जाते हैं।

(अट्टहास करता है)

(रानी सँभलकर खड़ी हो जाती है)

दासी—जाओ कायरो ! चुल्लू भर पानी में डूब मरो। यदि ऐसे ही बहादुर थे तो राणा जी के आगे आए होते। न मार-मारकर तुम्हारा कचूमर निकाल देते तो बात थी। बेशर्मो ! यदि तुम्हें अपने प्राण प्यारे हैं, तो भाग जाओ यहाँ से एकदम ! नहीं तो लेने के देने पड़ जायँगे !

दूसरा—रानी से कहो, सीधी तरह हमारे साथ हो ले। बाहर डोली खड़ी है। नहीं तो हम ज़बरदस्ती उठा ले जायँगे।

(आँचल में तलवार छिपाए हुए इंदुमती का शीघ्रतापूर्वक प्रवेश)

रानी—(इंदुमती के आँचल से एकदम तलवार खींचकर) क्यों, जबरदस्ती ? आओ, कौन-सा बहादुर है, जो मुझे लेने आया है ?

(सब आश्चर्य-चकित होकर पीछे हट जाते हैं)

तीसरा—(काँपता हुआ) तोबा, तोबा, यह रानी है या भूखी बाघिन ?

चौथा—अरे डरा क्यों जाता है ? आखिर स्त्री ही तो है।

(तलवार लेकर आगे बढ़ता है)

रानी—(यवन सैनिक के ऊपर टूटती हुई) सँभलना, नर-पिशाच ! आज स्त्री के ही हाथ से मर ! (यह कहकर तलवार से एकदम सिर काट डालती है। शेष सैनिक 'अल्ला हो अकबर' कहकर रानी की ओर बढ़ते हैं)

(नेपथ्य में)

अरे रे ! यह कैसा कोलाहल मच रहा है ! चलो, जल्दी चलो। मालूम होता है, मुगलों ने महारानी पर हमला कर दिया है !

(यह सुनकर सब मुगल घबरा जाते हैं)

(भीलराज के साथ कुछ भीलों का प्रवेश)

भीलराज—(कड़कती हुई वाणी में मुगलों को ललकारता हुआ) म्लेच्छो ! तुम्हारी इतनी हिम्मत कि महारानी पर वार करो। ठहरो, हम अभी तुम्हें इस दुःसाहस का मजा चखाए देते हैं।

(भयंकर युद्ध, यवन सैनिक हताहत होकर भागने लगते हैं। भीलों-सहित भीलराज का यवनों का पीछा करते हुए प्रस्थान)

रानी—(स्वगत) हाय क्रूर विधाता ! क्या मेरे ललाट में यही

लिखा था कि मैं भीषण वन-पर्वतों मे अपने स्वामी और अबोध बच्चों के साथ मारी-मारी फिरूँ और यवनों के द्वारा विडंबित की जाऊँ ? क्या मैं सदा ऐसे ही दिन देखती रहूँगी और कभी भी सुख का मुँह न देख सकूँगी ? (प्रकट) नीच सागर ! वामन होकर ऊँचे फल को तोड़ने की इच्छा रखता है ? अरे दुर्बुद्धि ! तू क्षत्रिय-वंश मे उत्पन्न होकर भी क्षत्राणियों के स्वरूप को नहीं पहचानता ? आश्चर्य है, तेरी मदांधता पर ! धिक्कार है, तेरे दुःसाहस को ! अरे क्षत्रिय-कुल-कलंक ! याद रख, पाप का फल बड़ा तीखा होता है। (कुछ सोचकर, स्वगत) प्यारी इंदु ! परमात्मा न करे, कदाचित् तुम यवनों के हाथों पड़ गई, तो न जाने तुम्हारी क्या गति होगी ! (माथा पकड़ कर फूट-फूट कर रोने लगती है, फिर जानुओं के बल खडी हो दोनो हाथ जोड़कर आर्तस्वर मे) भगवन् ! दीनबंधो ! हे अनाथों के नाथ ! अशरण-शरण ! बस, अब अधिक नही सहा जाता। हमारी लाज तुम्हारे हाथ है । तुम्हीं हमारी नैया को भँवर से पार उतारोगे।

(एक मुगल-सैनिक को घसीटते हुए भीलराज का प्रवेश)

भीलराज—(मुगल की दाढी को ज़ोर से झटकता हुआ) बोल, बोलता क्यों नही ? तू ही महारानी को लेने आया था ? तू ही आततायियों का सरदार बनकर आया था ? ले, अब इसका मजा चख। (यह कहकर बड़े ज़ोर से ठोकर मारता है)

मुगल—(गिड़गिड़ाता हुआ) न मारो, न मारो, भाई ! अब न मारो। इसमे हमारा कसूर नहीं है।

भीलराज—और क्या मेरा है ? (फिर कनपटी पर एक घूँसा जमाता है। मुगल चक्कर खाकर गिर पड़ता है)

मुगल—(कराहता हुआ) अपने मालिक सागर जी के हुक्म से ही हम लोग यहाँ आए थे। बस, अब न मारो, अब माफ़ करो। आगे से कान पकड़ता हूँ, ऐसी बात कभी मन मे भी न लाऊँगा।

रानी—भीलराज ! इसे छोड़ दो। इसे अपनी करनी का पर्याप्त दंड मिल चुका।

भीलराज—जो महारानी जी की आज्ञा।

(मुगल को छोड़कर अलग खड़ा हो जाता है)

मुगल—रानी-माँ ! अल्ला करे, तुम्हारा सुख-सुहाग सदा बना रहे।

(प्रस्थान)

भीलराज—रानी जी ! यह सागर कौन है ? कहाँ का है ? यह तो आप लोगों के पीछे बुरी तरह पड़ा है !

रानी—(दु:खी-सी होकर) भीलराज ! यह जान कर क्या करोगे ? यदि जानना ही चाहते हो तो सुनो। यह हमारे राणा जी का भाई है, जो जरा-सी बात पर ऐंठ कर अकबर से जा मिला। अकबर ने इसे चित्तौड़ का राजा बना रक्खा है।

भीलराज—रानी जी ! इन हिंदुओं का दिमाग़ न जाने कब ठिकाने आयगा। ये आपस मे जरा जरा-सी बात पर झगड़ बैठते है और दूसरों से जाकर मिल जाते हैं। यह नही सोचते कि इसका परिणाम क्या होगा। ये यह नहीं समझते कि दूसरों के मुकाबले मे संगठित होकर रहने मे ही भलाई है। न जाने, इनके दिमाग़ का यह भूत कब उतरेगा। क्या आप बता सकती है कि महाराणा की ओर से कितने मुगल मुगलों के विरुद्ध लड़ने के लिए उतावले हो रहे हैं ? पर ये हिंदू—परमात्मा इन्हे सुबुद्धि दे—अपने ही भाइयों का खून पीने पर उतारू हो रहे हैं। भाई, भाई की स्त्री

को हर कर, मुगलों के सुपुर्द करने के लिए लालायित हो रहा है। हिंदुओ ! तुम्हारा नाश निकट है। तुमने तो अपने राम, कृष्ण की भी मिट्टी पलीद कर दी। भीम, अर्जुन के विक्रम को भी मिट्टी मे मिला दिया। तुम्हे अपनी कन्याएँ ही यवनों को देनी आती है ! क्या तुम्हे भी कभी अकबर ने यवन-राज-वंश की कोई कन्या दी है ?

रानी—भीलराज ! समय आयगा कि इनकी भी आँखे खुलेगी। अभी इनके दिमाग़ों पर यह भूत सवार है कि यवन लोग म्लेच्छ हैं, हमे इनकी कन्या न लेनी चाहिए। वैसे तो संपूर्ण मनुष्य जाति एक है। न कोई म्लेच्छ और न कोई देवता। गुण, कर्मो के अनुसार ही मनुष्यों के भिन्न-भिन्न विभाग हो जाते है। कोई दाढ़ी रखता है, कोई दाढी न रखकर केवल मूँछे ही रखता है और कोई दोनों का ही सफ़ाया कर डालता है। परंतु परमात्मा के यहाँ से आते है सब एक ही रूप मे। और यदि उन्हे म्लेच्छ मान भी लिया जाय, जैसा कि आज-कल हिंदुओं का विचार बना हुआ है—यद्यपि यह विचार थोड़े ही दिनों का मेहमान है—फिर भी 'स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि' नीति कहती है कि—स्त्री-रत्न चाहे नीच कुल मे ही क्यों न उत्पन्न हुआ हो, उसे ग्रहण कर लेना चाहिए।

भीलराज—रानी जी ! आप यही तो कहना चाहती हैं न कि हिंदू-युवकों को यवन-युवतियों के साथ शादी करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए और उन्हें झूठे धर्म के झंझट मे न पड़ना चाहिए। किंतु हिंदू लोग अभी हिंदूमात्र के साथ ही संबंध नहीं जोड़ना चाहते, फिर आप कैसे आशा करती हैं कि ये लोग इतने आगे बढ़ जायँगे ?

रानी—मै मानती हूँ, भीलराज ! हिंदुओं मे अभी उतना

साहस नहीं, जितना होना चाहिए। और मै यह भी मानती हूँ कि बड़े बड़े हिंदू-नेता तक भी अपनी बहन-बेटियों को यवनों के साथ ब्याह देते हैं और स्वयं कोई भी हिंदू-नेता यवन-कुमारियों से विवाह करता हुआ नही पाया जाता। पर अब आगे आगे ज्यों ज्यों पुराने संस्कार उनके दिलों से हटते जायँगे, वे इस बात की आवश्यकता भी अनुभव करने लगेंगे।

भीलराज—अच्छा, रानी जी ! यह समय इन विषयों पर विस्तारपूर्वक बातचीत करने का नहीं है। यह संकट-काल है। हो सकता है कि और सैकड़ों, हज़ारों यवन मौका पाकर यहाँ आ धमकें और आत्म-रक्षा करनी कठिन हो जाय। इसलिए आइए, यवन लोग जो डोली छोड़कर भाग गए है, उसी पर सवार होकर, किसी सुरक्षित स्थान मे चलिए। मै अभी भीलों को डोली तैयार रखने के लिए कहता हूँ।

(प्रस्थान)

रानी—दासी ! भीलराज ठीक कहते हैं। हमे अवश्य किसी सुरक्षित स्थान की शरण लेनी चाहिए। जाओ, कह दो, हम जाने के लिए तैयार हैं।

(भीलराज का प्रवेश)

दासी—भीलराज ! हमारी महारानी सुरक्षित स्थान पर जाने के लिए तैयार हैं। डोली मँगवा लीजिए।

भीलराज—जो आज्ञा। मै अभी डोली लिवाए लाता हूँ।

(प्रस्थान)

(भीलराज भीलों के द्वारा डोली उठवा कर ले आते है)

रानी—दासी ! सब बच्चों को भी बुला लो।

(दासी बाहर जाकर बच्चों को ले आती है)

भीलराज—रानी जी ! जल्दी ही बच्चों सहित डोली में बैठ जाइएगा। मै भी राणा जी को अपने निर्दिष्ट स्थान की सूचना देकर अभी लौटता हूँ।

(रानी बच्चो सहित डोली मे बैठ जाती है । भील डोली उठाकर चल देते हैं । सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—आगरा, अकबर का मंत्रणागृह

समय—तीसरा पहर

(अकबर अपने आसन पर बैठा हुआ है । अबुलफजल, मानसिंह और पृथ्वीराज का प्रवेश । सब विधि-पूर्वक अभिवादन करके बैठ जाते है)

अकबर—मंत्री जी ! मेवाड़ से कोई नया समाचार आया कि नही ?

अबुलफजल—जहाँपनाह ! आजकल में तो कोई खबर नहीं मिली, मगर कुछ दिन हुए एक दूत ने खबर दी थी कि प्रताप अब भीलों की झोंपड़ियों मे अपने बच्चों सहित दिन काट रहा है, और यह अफवाह सुनी है कि वह अब मेवाड़ के इलाके मे ज्यादा दिन नहीं ठहरेगा, किसी और जगह चला जायगा।

अकबर—क्यों राजा साहब ! आप क्या सोचते है ? प्रताप अब क्या कर रहा होगा ?

मानसिंह—जहाँपनाह ! मेरे विचार मे तो वह हमारी फौजों से तंग आकर या तो कहीं भागने की सोच रहा होगा और यह भी संभव है कि बच्चों सहित भूखा-भटकता कहीं प्राणों से ही हाथ न धो बैठा हो !

पृथ्वीराज—नही, यह कभी नहीं हो सकता। वह तपस्वी जंगली फल-मूल और केवल झरनों का कसैला पानी पीकर भी वर्षों काट सकता है। मैं उसके कठोर कर्त्तव्यमय स्वभाव को अच्छी तरह जानता हूँ। ऐसी-ऐसी बातों से वह कदापि मार खाने वाला नही। राजा साहब ! आप है किस होश मे ?

अकबर—कवि जी ! मुझे आपकी बात बहुत कुछ जँचती है। प्रताप-जैसा अक्खड़ आदमी कभी भी मेवाड़ छोड़कर जाने वाला नही। लड़ता-भिड़ता भले ही मर जाय, पर वह ऐसी इरादे की कमजोरी कभी नही दिखा सकता।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादनपूर्वक) जहाँपनाह ! चित्तौड़ के महाराज सागरसिह आपसे मिलना चाहते हैं, दरवाजे पर खड़े हुए हैं।

अकबर—जाओ, उन्हे जल्दी भेजो।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

(सागरसिंह का प्रवेश)

अकबर—कहिए, राणा साहब ! कुशल तो है ?

सागरसिंह—(राजोचित अभिवादनपूर्वक) जहाँपनाह ! सब आपकी कृपा है। आज मैं जिस लिए आपकी सेवा मे आया हूँ, आज्ञा हो तो निवेदन करूँ ?

अकबर—क्यों नहीं, राणा साहब ! जरूर कहिएगा ।

सागरसिंह—जहाँपनाह ! राणा प्रताप आजकल भीलों की झोंपडियों और पहाड़ी गुफाओं मे अपने बाल-बच्चों को छिपा-छिपा कर दिन काट रहा है और गुप्त-रूप से युद्ध की तैयारी भी कर रहा है। उसने हजारों भीलों की सेना इकट्ठी कर ली है और उसने, भीमसिह को छोड़कर, अपने अन्य सरदारों को मेवाड़ मे गुप्त-रूप से सैन्य-संग्रह करने के लिए भेज रक्खा है। अपने आप भी कभी कभी, रात के समय, अपने स्त्री-बच्चों को भीलों की संरक्षकता मे छोड़कर, बाहर मैदान मे उतर आता है और राजपूतों को उत्तेजित कर अपनी सेना मे भरती कर लेता है। अब, जब तक कि वह अपनी तैयारी पूरी नही कर पाता, उसका इलाज जल्दी ही हो जाना चाहिए। अन्यथा बाद मे कठिनता का सामना करना पड़ेगा ।

मानसिंह—जहाँपनाह ! मेरे विचार मे तो जब तक प्रताप के सरदार सैन्य-संग्रह करके नही लौटते, तब तक उस पर शीघ्र ही हमला बोल दिया जाय और एक दम उसे पकड या मार डाला जाय ।

अकबर—बहुत अच्छा, मंत्री जी ! अब की बार अब्दुर्रहीम खानखाना से कहो कि जल्दी ही जाकर अरावली को घेर ले और प्रताप को कैद कर मेरे सामने हाज़िर करे और मौका लगे तो रानी को भी कैद कर ले। पचास हजार फौज साथ लेता जाय ।

अबुलफजल—जो हुक्म, जहाँपनाह !

(प्रस्थान)

अकबर—बाकी सलाह-मशवरा फिर किसी दिन होगा ।

अब आप लोग जाकर आराम करें।

सब—जो हुक्म, जहाँपनाह !

(यह कहकर अभिवादनपूर्वक सब का प्रस्थान)

अकबर—प्रताप ! तू सचमुच बड़ा बहादुर है । तू भी अजीब इरादे का आदमी है । जो अकबर सबको अपने जाल मे फँसा लेने के लिए मशहूर है, वह भी तुझसे तंग आ गया। पता नही, तुझमे यह हिम्मत कहाँ से आकर इकट्ठी हो गई है । शाबाश है बहादुर ! शाबाश हैं तुझे। तू शाहबाज की झपट मे भी एक बार नहीं आया । बेचारा तुझे पकड़ने के लिए दो-तीन बार चट्टानों से टक्कर ले हार कर लौट आया।

(प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

छठा दृश्य

स्थान—अरावली, प्रताप का वास स्थान

समय—संध्या

(भीलराज महारानी पद्मावती के आगे दोनो हाथ जोड़े खड़ा है)

भीलराज—रानी जी ! और किसी चीज़ की आवश्यकता हो तो आज्ञा कीजिएगा, वह लाई जाय !

रानी—नहीं, भीलराज ! तुम्हारी कृपा है। सब कुछ विद्यमान है। जब आवश्यकता होगी, देखा जायगा।

(सहसा खेलने गए हुए बच्चों का भागते हुए प्रवेश)

सब—माता जी ! माता जी ! (कोलाहल वाली दिशा की ओर इशारा करके) यह कैसा कोलाहल मच रहा है ? मालूम होता है कि इधर कही बड़े जोर की लड़ाई हो रही है।

रानी—(ध्यान लगाकर सुनने लगती है)

भीलराज—(कान लगाकर, सुनकर) रानी जी ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि इधर कही राणा जी और यवनों की आपस मे बज उठी है।

(सहसा हाँफते हुए एक दूत का प्रवेश)

दूत—भीलराज ! ग़जब हो गया ! अब के तो बड़े जोर की ठनी !

(सब दूत के चारों ओर इकट्ठे होकर
ध्यान से सुनने लगते हैं)

रानी—कहो, दूत ! ठीक ठीक कहो, क्या बात है ?

दूत—(रानी की ओर मुँह मोड़ अभिवादन करके) रानी जी सुन सकती है।

भीलराज—जल्दी कीजिए। पहले यह बता दीजिए कि राणा जी का क्या समाचार है ?

दूत—मत पूछो, भीलराज ! राणा जी का समाचार मत पूछो। अकबर ने अब की बार पठान अब्दुर्रहीम खानख़ाना को बड़ी भारी फौज के साथ राणा जी को पकड़ने भेजा था, पर राणा जी ने वे हाथ दिखाए कि बेचारा आगे से कभी इधर को नही झाँकेगा।

रानी—तो क्या युद्ध समाप्त हो चुका ?

दूत—हाँ, रानी जी ! युद्ध समाप्त हो चुका । राणा जी ने मुझे जल्दी इसलिए भेज दिया था कि कहीं भयंकर युद्ध-कोलाहल को सुनकर आपके मन मे चिता न उत्पन्न हो जाय ।

(प्रताप का प्रवेश)

सब—(हाथ जोड़ते है)

प्रताप—भीलराज ! मुगलों की कोई टुकड़ी इधर तो नही आई ?

भीलराज—नही, राणा जी ! इधर मुगलों की कोई टुकड़ी नही आई । पर, राणा जी ! आप अकेले क्यों हैं ? कुमार अमरसिह और भीमसिंह भी तो आपके साथ गए थे, वे कहाँ रह गए ?

प्रताप—वे लोग शत्रु पर दूसरी ओर से आक्रमण करने के लिए गए थे । क्या वे अभी तक नही आए ?

भीलराज—नहीं, राणा जी ! वे अभी तक तो यहाँ आए नहीं ।

रानी—नाथ ! वे भी आते होंगे; आप स्नान, संध्यादि से निवृत्त हो लीजिए । मैं तब तक भोजन का प्रबंध किए लेती हूँ । भीलराज ! तुम भी बच्चों को पहाड़ी झरने के किनारे घुमा-फिरा लाओ । देखो, संध्या का समय कितना सुहावना हो रहा है । ऐसे समय घर मे कभी न रहना चाहिए ।

(सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

सातवाँ दृश्य

स्थान—एक पहाड़ी झरना

समय—संध्या

(प्रताप स्नान के अनंतर एक शिला पर आसन लगाकर बैठे हुए संध्या कर रहे है । सध्याकालीन अनुराग चारों ओर छाया हुआ है । वर्षा-जल से धुले हुए वृक्षों के पत्ते मंद वायु से हिल-जुल रहे हैं । अमरसिंह और भीमसिंह का एक सुंदरी के साथ प्रवेश)

प्रताप—(संध्या से विरत हो आँखें खोल सामने देखकर दूसरी ओर मुँह करके) क्यों अमर ! ये पूजनीया कौन हैं ? इन्हे तुम यहाँ कैसे ले आए ?

अमरसिंह—महाराज ! ये यवन-सेनापति की बेगम साहिबा है । इन्हे हमने युद्ध के समय कैद किया था । ये आपके सामने उपस्थित है । जैसी आपकी आज्ञा हो, वैसा किया जाय ।

प्रताप—(क्रोधपूर्वक) अमर ! जाओ, इन्हें एकदम यवन-सेनापति के पास लौटा दो । देखो, आगे से कभी किसी निरपराधिनी के साथ ऐसा व्यवहार न करना । हमारी शत्रुता विदेशियों से है, न कि उनकी निरपराध स्त्रियों से ।

भीमसिंह—किंतु विधर्मी लोग भी तो हिंदू-स्त्रियों को पकड़ कर उनके साथ मनमाना अत्याचार करते है ।

प्रताप—किंतु विधर्मियों की स्त्रियाँ तो अत्याचार नहीं करती । फिर उस अत्याचार का दंड उन्हे क्यों मिलना चाहिए ?

भीमसिंह—फिर भी, राणा जी ! हिंदू-स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का कुछ न कुछ प्रतिकार तो होना ही चाहिए ।

प्रताप—इसका प्रतिकार उलटा यवन-स्त्रियों पर अत्याचार करना या उन्हे बंदी बनाना नहीं है। किंतु जो विधर्मी, आततायी मातृ-जाति पर अत्याचार करते है, उन्हे उचित दंड देना ही उसका उचित प्रतिकार है। मूर्ख, अशिक्षित, असभ्य जाति के मनुष्य ही प्रायः इस प्रकार के अत्याचार किया करते हैं। उनकी प्रवृत्ति पशुओं के समान होती है। अन्य जाति की स्त्रियाँ तो एक ओर रही, वे अपनी माँ-बहनों की भी प्रतिष्ठा का ध्यान नही रखते। सभ्य समाज का कर्त्तव्य है कि ऐसे जघन्य जन-समुदाय को सभ्यता का पाठ पढ़ाए और उनमे मनुष्यत्व उत्पन्न करे। तभी ऐसे अवांछनीय अत्याचारों का अंत हो सकता है। समझे, भीमसिह ?

भीमसिंह—हाँ, महाराज ! आप बिलकुल ठीक कहते हैं। अब मेरा सब संदेह दूर हो गया।

प्रताप—(उत्तेजित होकर) अमर ! तुम क्या खड़े सुन रहे हो ? जाओ, जितना जल्दी हो सके, इन्हे यवन-सेनापति के समीप पहुँचा दो।

अमरसिंह—जो आज्ञा, महाराज !

प्रताप—भीमसिंह ! तुम भी साथ जाओ। देखो, इन्हे किसी प्रकार का कष्ट न होने पाय।

(अमरसिंह और भीमसिंह का सुदरी के साथ प्रस्थान)

प्रताप—(विचारपूर्वक) अमरसिंह भी अल्हड़ है ! इसमे अभी व्यावहारिक बुद्धि की बहुत कमी है ! अच्छा, संभव है, आगे

चलकर ठीक हो जाय और सब बातों का आगा-पीछा ठीक-ठीक समझने लगे !

(शिलातल से उठकर धीरे-धीरे प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

आठवाँ दृश्य

स्थान—पृथ्वीराज का गृहोद्यान

समय—तीसरा पहर ।

(पृथ्वीराज आरामकुर्सी पर आराम से लेटे हुए कविता कर रहे है। पृथ्वीराज की पत्नी किरणमयी का प्रवेश)

किरणमयी—नाथ ! इतने तल्लीन होकर आज आप क्या लिख रहे है ?

पृथ्वीराज—आओ, प्रिये ! (कुरसी की ओर इंगित करके) बैठो, मैं आज एक कविता लिख रहा हूँ।

किरणमयी—क्या आप बता सकते हैं कि आपने यह कविता किस विषय पर लिखी है ?

पृथ्वीराज—क्यों नहीं प्रिये ! तुम्हे न बताऊँगा तो किसे बताऊँगा ! (विचार-निमग्न हो जाता है)

किरणमयी—(स्वगत) वह स्त्री सचमुच धन्य है, जिस पर पति प्रसन्न हो और सदा जिसका उचित ध्यान रखता हो। सौभाग्य से मुझे ऐसे ही पति मिले है । मेरे हृदय-सम्राट् क्षत्रिय होते हुए भी कितने सहृदय, कितने दयालु और कैसे भाव-प्रवण है ! मैं इनके कवि-हृदय पर लट्टू हूँ। आज, न जाने, किस समस्या को सुलझाने पर तुले हैं ! (प्रकट) प्राणनाथ ! तो क्या मै आपके इन

मीठे वचनों से प्रेरित होकर यह पूछने की धृष्टता कर सकती हूँ कि—आज आपके मुख पर उद्विग्नता, नैराश्य, वीरत्व तथा कर्तव्य-परायणता का भाव क्यों नृत्य कर रहा है ?

पृथ्वीराज—मेरे सामने आज एक विचित्र समस्या उपस्थित है, प्राणेश्वरी ! सुना है, भारत का भाग्य-रवि आज अस्त हुआ चाहता है ! वह अपनी समस्त किरणों को सिकोड अस्ताचल पर कूदने की तैयारी कर रहा है ! भारत का नाविक आज क्षुब्ध सागर मे भारत की नैय्या को धोखा देने पर तुला है ! मेरे हृदय मे एक टीस है, जो हजारों बिच्छुओं के डंकों से भी कहीं भयंकर है ! क्या तुम कुछ समझती हो, प्रियतमे ?

किरणमयी—मैं सब समझती हूँ, हृदयेश्वर ! आपके साथ रहकर मै गूढ से गूढ रहस्य को भी समझने मे समर्थ हो सकी हूँ। मै खूब जानती हूँ कि आप पूजनीय राणा प्रताप को लक्ष्य करके ये बाते कह रहे है। मुझे भी राजनीति से प्रेम है । मेरे भी अंतरंग मित्र मुझे सब खबर देते रहते हैं । मैंने सुना है कि एक वन-बिलाव की क्रूरता ने पत्थर को मोम बना दिया है। बच्चों के करुणा-विलाप ने उलटी गंगा बहा दी है। स्वदेश के एकमात्र गौरव हिंदूपति राणा प्रतापसिंह अपने बच्चों की दुर्दशा से घबराकर (क्रोध से काँपती हुई) कामी अकबर के पास एक संधि-पत्र भेज बैठे है। (बहुत गहरी साँस लेकर चुप हो जाती है)

पृथ्वीराज—प्रिये ! बात तो सचमुच यही है, उनके इस क्षणिक मोह को दूर करने के लिए ही मैने यह कविता लिखी है। किंतु तुम्हे अचानक क्रोध ने कैसे आ घेरा ? और यह तुमने इतनी लंबी साँस क्यों खींची है ? क्या इसका कारण बता सकती हो ?

किरणमयी—(उत्तेजित होकर) नाथ ! इसका कारण मत पूछो। यह समय इसके लिए उपयुक्त नही है। मेरे हृदय मे एक ज्वाला है! उसकी लपटों को अभी भीतर ही छिपी रहने दो! मुझे सूझ रहा है कि अब बहुत दिनों तक मुगलों का राज्य भारत मे नहीं रह सकेगा! जिस राज्य के कर्णधारों और कामी कुत्तों में कुछ भी अंतर न हो, वह कब तक अपनी कुशल मना सकता है! दूसरी ओर परम पूजनीय हिंदूपति महाराणा प्रताप है, जिन्होंने, एक यवन-सुंदरी को बंदी-अवस्था मे अपने सामने खडी हुई देखकर, उधर से एकदम मुँह मोड लिया और उसे बंदी बनाने वाले अपने पुत्र अमरसिह को, एकदम, उसे उसके पति के समीप लौटाने की आज्ञा दे दी। प्राणेश्वर ! मेरे मन मे भयंकर प्रतिहिसा की आग सुलग रही है। वह अब मुझे यहाॅ अधिक दिन नहीं ठहरने देगी।

पृथ्वीराज—प्राणप्रिये ! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे आत्माभिमान को किसी ने भयंकर ठेस पहुँचाई है। पर बिना ठीक-ठीक बात बताए उसका क्या प्रतिकार हो सकता है! ठीक-ठीक बात क्यों नही बताती ?

किरणमयी—नाथ ! मैं कह चुकी हूँ कि उस विषय मे मैं आपसे फिर किसी समय बातचीत करूँगी। रंग मे भंग हुआ जाता है। अब आप अपनी कविता के विषय मे बातचीत कीजिए।

पृथ्वीराज—हाँ, प्राणेश्वरी ! मैं, इस समय, उसी संधि-पत्र की उलझन को सुलझाने मे लगा हूॅ। तुम-सरीखी अनुरूप पत्नी को पाकर इस बंदी-जीवन मे भी मैं अपने को सौभाग्यशाली समझता हूँ। मेरे इस बंदी-जीवन मे एकमात्र प्राणों का संचार करने वाली तुम्ही हो। तुम्हारा देश-प्रेम अनुकरणीय है। आख़िर

हो तो महाराणा प्रताप की भतीजी ही। प्रिये ! याद रक्खो, ईश्वर ने चाहा तो मै भी इस संधि-पत्र की उलझन को ऐसा सुलझा दूँगा कि अकबर, सलीम, मानसिंह आदि सब देखते के देखते ही रह जायँगे।

किरणमयी—ईश्वर आपकी अभिलाषा पूर्ण करे, यही हार्दिक इच्छा है। आपकी कविता मे वह दिव्य शक्ति हो, जो भारत के सुप्त भाग्य मे पुनः जान फूँक दे ! उसकी छटपटाती आत्मा मे एक बार फिर नव-चेतना का संचार कर दे ! और संसार उस कविता के प्रभाव को आश्चर्यमय नयनों से देखे !

पृथ्वीराज—देखो, प्रिये ! भगवान ने चाहा तो ऐसा ही होगा। घायल सिंह फिर अँगड़ाई तोड़ता हुआ उठ खड़ा होगा। और अपने प्रतिपक्षी पर ऐसे वेग से झपटेगा कि वह किंकर्तव्य-विमूढ हुए बिना नही रहेगा।

किरणमयी—(कुछ सोचती-सी हुई) परंतु नाथ ! मुझे तो यह बात झूठी उड़ाई हुई जान पड़ती है ! जो वीर सोलह सतरह साल से एक विशाल साम्राज्य के विरुद्ध निरंतर लोहा ले रहा है, जिसने अभी तक अपनी जान हथेली पर रखकर आत्म-प्रतिष्ठा को स्थिर बना रक्खा है, जिसने भोग-विलास के जघन्य जीवन को तिलांजलि दे स्वेच्छा से तपस्वी-जीवन अंगीकार किया है, वह भला कब इस प्रकार का ऊट-पटाँग पत्र लिख सकता है ! कम से कम मुझे तो इस बात पर बिलकुल भी विश्वास नहीं है।

पृथ्वीराज—प्रिये ! मेरा भी ऐसा ही विचार है। मुझे भी जब यह पता लगा कि राणा प्रताप के पास से कोई पत्र आया है, तो मैंने सम्राट् अकबर से वह पत्र दिखाने के लिए कहा। किंतु उन्होंने वह बात बातों मे ही टाल दी।

किरणमयी—अच्छा नाथ! कोई हानि नहीं। आपको फिर भी उन्हे सावधान करने के लिए उस पत्र का उत्तर लिखना ही चाहिए था। अच्छा हुआ, लिख दिया। तो क्या मै इतनी सौभाग्य-शालिनी हूँ कि मै आपकी उस कविता को, जो भारत के इतिहास मे स्वर्णाक्षरों मे लिखी जायगी, सुन सकूँ ?

पृथ्वीराज—क्यों नहीं, प्राणेश्वरी! (कविता-पत्र देता हुआ) लो, यह वह कविता है। तुम इसे अपने निसर्ग-मधुर स्वर मे पढो, मै सुनूँगा। किंतु यह गुप्त-पत्र है; जरा धीमे स्वर मे पढ़ना। यह वीणा उठा लो।

किरणमयी—जो आज्ञा।

(धीमे स्वर में वीणा बजाती हुई गाती है)

(गीत)

उठो, उठो, ऐ वीर महान!
क्यों वह त्यागा पाला-पोसा सहसा हा! अभिमान?
एक तुम्हीं तो थे अकबर से टक्कर लेने वाले;
उसकी कुटिल कुचालों का बस उत्तर देने वाले।
हिंदू-पति! हा! आज हुआ यह क्या तुमको अभिमानी?
हाय! नहीं क्या रहा तुम्हारी भीषण असि में पानी?
तुले मिटाने जो सम्मान। उठो०
संधि-पत्र लिखकर क्या तुमने है निज मन में ठानी—
'मैं भी दूँगा अकबर को अब अपनी कन्या, रानी'?
व्यर्थ हुआ तब तो वह सारा ओह! प्रयत्न तुम्हारा;
बलि-वेदी भी चीख उठेगी, कह तुमको 'हत्यारा'।
भूल गए सब का बलिदान! उठो०

सोच-सोचकर यह अति मुझको है अचरज होता—
'मारेगा अकबर-जलनिधि में मेवाड़-कमल गोता'!
कभी न सरसिज को देखा है, जल में गोता खाते,
पर आज असंभव संभव होगा, कैसी ये बातें!
सुन यह निकले जाते प्राण। उठो०

सोते हैं हा! राजपूत सुख की शय्या पर सारे;
अकबर-निर्जन-वन में फिरते, स्त्री-दल, लुटते, मारे।
आग लगाएगा उस वन में कौन, लगाने वाले—
तुम ही हा जब शांत हुए, हा! साँप मुझे तो खा ले!
स्वप्न हुआ अब तो उत्थान! उठो०

अकबर-रजनी-लीन हुए सब, तुम ही पहरा देते,
प्रभु-इच्छा, फिर भी जागेंगे, वे सब करवट लेते।
हुंकार तुम्हारी गूँज रही है अरि के महलों में,
जाने दो, क्या रक्खा है कायरता के खेलों में!
अब भी कर लो निज-पहचान। उठो०

कायरता के खेल सभी ने खेले, तुम भी खेलो;
अपनी कन्या, रानी देकर तुम भी यश अब ले लो।
पूछेगा पर कौन तुम्हें फिर, सब ही धिक्कारेंगे—
'धिक्, धिक्, धर्म-ध्वजी! ओ ढोंगी!' यों तानें मारेंगे।
क्यों बनते हो आर्य! अजान? उठो०

मेरे बंदी जीवन से होड़ तुम्हें तो आ जाओ;
प्रार्थी हूँ मैं, बदला कर लो, मेरा पिंड छुड़ाओ।
फिर मैं ही देखूँगा रिपु को, यही प्रतिज्ञा मेरी;
आओ, आओ, शीघ्र यहाँ पर, मुझे अखरती देरी।—
तजकर राणा! अपनी आन। उठो०

यद्यपि आर्य ! नहीं हूँ मैं, हत-संधि-पत्र-विश्वासी;
अकबर को भी कहा—'लिखे क्यों ऐसा दल अविलासी !
कहा-'दिखाओ' मौन हुए, बस लाज तुम्हारे हाथों में,
मूँछ मरोड़ूँ ऊपर को या खड्ग घुसेड़ूँ गातों में ?
मिटा दो अब सारा अज्ञान । उठो०

पृथ्वीराज—प्राणेश्वरी ! तुम गा क्या रही थी, कोयल कूक रही थी ! तुम्हारी रसीली वाणी ने मेरी नीरस कविता को सरस बना दिया ।

किरणमयी—नाथ ! आपकी यह कविता अनंत काल तक वायु के स्वरों मे गूँजा करेगी और परतंत्र भारत के नैराश्यमय जीवन मे आशा का संचार करती रहेगी ।

पृथ्वीराज—प्राणेश्वरी ! अनंत काल तक प्रतिष्ठा पाने की इच्छा से मैने यह तुकबंदी नहीं की है, मैने तो केवल अपने सीधे-सादे ठेस पाए हुए उद्विग्न मनोभावों को इस रूप मे रख दिया है । अधिक प्रशंसा की आवश्यकता नही ।

किरणमयी—नाथ ! मै अधिक प्रशंसा कुछ भी नही करती । मेरे तो आप ईश्वर हैं ही; किंतु सच पूछे तो, संसार के लिए भी आप ईश्वर ही है । कवि और ईश्वर मे भेद ही क्या है ! 'कविर्मनीषी' इस मंत्र मे ईश्वर को कवि कहा गया है । और फिर कवि की कल्पना ईश्वर की रचना से कुछ कम सौंदर्यमयी भी तो नही होती ।

(दासी का प्रवेश)

दासी—महाराज ! सम्राट् का एक सेवक आपको खोज रहा है ।

पृथ्वीराज—उससे कहो कि अभी आते है ।

(दासी का प्रस्थान)

पृथ्वीराज—प्रिये ! मैं जाता हूँ । अकबर ने न जाने क्यों बुलाया है । जाओ, तुम भी विश्राम करो ।

(किरणमयी जाने लगती है)

पृथ्वीराज—जरा ठहरो, प्रिये ! देखो, यह पत्र किसी विश्वस्त व्यक्ति के हाथ राणा प्रताप के पास शीघ्र ही भिजवा देना ।

किरणमयी—जो आज्ञा । मैं अभी इसे भेजने का प्रबंध किए देती हूँ । (स्वगत) अथवा मैं स्वयं ही यह कृत्य संपन्न करूँगी ।

(एक ओर से पृथ्वीराज और दूसरी ओर से किरणमयी का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

नवाँ दृश्य

स्थान—अरावली पर्वत, प्रताप की कुटी

समय—प्रभात

(एक वृक्ष पर लाल झंडा फहरा रहा है)

(राणा प्रताप, चूड़ावत कृष्ण, भामाशाह, शोणिगुरु सरदार आदि परस्पर बातचीत कर रहे हैं)

प्रताप—आज आप लोग चित्तौड़ की ओर खूब जी भरकर देख लीजिए । हो सकता है कि हमें आज मेवाड़ को अंतिम प्रणाम करना पड़े ! अकबर कितना हृदय-शून्य और कुटिल है, यह अच्छी तरह जानता हूँ । वह अवश्य किसी और सेनापति की अध्यक्षता में बड़ी से बड़ी सेना भेजेगा । मुझे दुःख है कि मैं अभी तक जननी जन्म-भूमि का उद्धार नहीं कर सका । अब तक

तो हम मेवाड़ होकर जाने वाले विदेशी माल को लूटकर अपने सैनिकों का खर्च चलाते रहे। और बहुत कुछ धन हमारे पूर्वज छोड़ गए थे। इस प्रकार सोलह सतरह साल तक तो काम चल गया। अब आगे काम कैसे चलेगा। क्योंकि अब मेवाड़ होकर जाने वाला विदेशी माल भी इधर से जाना बंद हो गया है। मुझे यही चिंता है। वीर सरदारो! इसका अभिप्राय यह कदापि नही कि मै शत्रु के आगामी आक्रमणों से भयभीत होकर ऐसा कह रहा हूँ। सूर्यवंशी, भय किस चिड़िया का नाम है, यह जानते ही नही। निराशा की घोर निशा मे दीन-हीन के वेश में स्तब्ध एवं निश्चेष्ट होकर बैठे रहना उनके स्वभाव के विरुद्ध है। जीवन क्या वस्तु है, यह वे समझते है। संसार मे आकर मनुष्य का क्या कर्तव्य है, यह वे जानते है। राजा को ईश्वर का अंश क्यों कहा गया है, इसके रहस्य को वे पहचानते है। भयंकर से भयंकर विपत्ति-काल मे भी दीनता उन्हे नहीं सुहाती। कार्पण्य क्या वस्तु है, इसका उन्हे तनिक भी आभास नही होता। श्रीराम के चरित्र से हमने यही सीखा है। किंतु सीता लक्ष्मी की खोज और सागर-बंधन के लिए उन्हे भी सहायता की आवश्यकता प्रतीत हुई थी। मै भी यदि स्वातंत्र्य-लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए धन, बल की अपेक्षा करूँ तो क्या हानि है! बिना साधन के सिद्धि कहाँ! इसलिए मेरी इच्छा है कि कुछ समय तक, जब तक हम धन, बल एकत्रित नहीं कर लेते, अपने कार्य को स्थगित कर दे! आप लोगों का इसमें क्या मत है?

भामाशाह—महाराज! यदि आप केवल धन, बल के अभाव के कारण ही सारा कार्य स्थगित करना चाहते है, तो इस सेवक ने अब तक जितना धन मेवाड़ के महाराणाओं की सेवा मे रहकर संचित किया

प्रताप—(एकाएक उठकर बाहे फैलाकर) आओ, भाई शक्त ! आओ। इतने दिन कहाँ लगा दिए ?

(दोनो गले मिलते है)

प्रताप—(पृथक् होकर) बैठो, भाई शक्त! बैठो।

शक्तसिंह—(प्रणामपूर्वक) जो आज्ञा।

(दोनो तृणासनो पर बैठ जाते है)

प्रताप—कहो, भाई ! इतना विलंब कैसे हो गया ?

शक्तसिंह—राणा जी ! मैने मार्ग मे सैन्य-संग्रह करते समय यह जान लिया कि आपके नाम मे एक विचित्र जादू है। मेवाड़ का बच्चा-बच्चा आपके लिए मर मिटने को तैयार बैठा है। मैने बात की बात मे यह कहकर कि—'मै महाराणा प्रतापसिंह का भाई शक्तसिंह अपने पुराने पापों के प्रायश्चित्त-स्वरूप अपनी जननी जन्म-भूमि मेवाड़ के लिए प्राणों की बलि देने आया हूँ, और मै अपने देवता-स्वरूप भाई महाराणा प्रतापसिंह की शरण मे जा रहा हूँ, जो चाहे, मेरे साथ हो सकता है।' यह सुनते ही एकदम हजारों वीर बालक, युवक और वृद्ध, जो जिस अवस्था मे था उसी दशा मे केवल हथियार हाथ मे लेकर मुझसे आकर मिल गए। मैने मार्ग मे एकदम 'भीम-सरोवर' पर हमला कर दिया और वहाँ से मुगल-सेना को मार भगाया। वह आपकी भेंट है। बिना कुछ भेंट दिए आपके दर्शन करने मे मुझे लज्जा प्रतीत होती थी। (सिर नीचा कर लेता है)

(सब शक्तसिंह की ओर स्नेहमयी दृष्टि से देखने लगते है)

शक्तसिंह—मैने शत्रु के मालपुर नामक प्रसिद्ध नगर को भी

लूट लिया है । उसका सारा धन किले मे सुरक्षित है । वह भी आपकी भेंट है।

प्रताप—भाई शक्त! मैं आज तुम्हे पाकर अपने को कृत-कृत्य समझता हूँ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(प्रणामपूर्वक) महाराज ! कोई घुड़सवार युवक आपसे मिलने के लिए आया है।

प्रताप—जाओ, जल्दी लिवा लाओ । घोड़ा वृक्ष के तले बाँध देना।

(द्वारपाल के साथ युवक-वेश मे किरणमयी का पत्र लेकर प्रवेश)

द्वारपाल—(प्रताप की ओर इंगित करके) ये हैं राणा जी । इनके पास चले जाइएगा।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

प्रताप—आओ, युवक ! कहो, कहाँ से और क्यों आए हो ?

युवक—(अभिवादन करके) महाराज ! सर्वश्री राजकवि पृथ्वीराज ने मुझे यह पत्र लेकर आपकी सेवा मे भेजा है। (पत्र देता है)

(शक्तसिंह युवक की ओर बड़े गौर से देखते है)

प्रताप—(पत्र पढ़कर) अच्छा युवक ! राजकवि पृथ्वीराज से कह देना कि घबराने की कोई बात नहीं । आप किसी प्रकार की चिंता न करे । राणा प्रताप शीघ्र ही शत्रु-सेना मे विद्युत् के समान कड़केगा । मंत्री जी ! यह इन्हे लिखकर दे दीजिए । मै हस्ताक्षर किए देता हूँ।

भामाशाह—(लिखकर प्रताप के हस्ताक्षर करवाने के अनतर) यह

अपने पत्र का उत्तर ले जाओ। (पत्र देने लगता है)

युवक—(अपना हाथ एक ओर हटाकर) किंतु राणा जी ! मैं लौटने के लिए तो नहीं ··(रुक जाता है)

प्रताप—ठीक ठीक कहो, क्या कहते हो ? कहते-कहते रुक क्यों गए ?

युवक—मैं कहती—नहीं, नहीं—मैं कहता हूँ कि मैं आपके पास लौटने के लिए नहीं आई । (स्वगत) ओह ! मैं फिर यह क्या बोल गई ! अच्छा, सोच लिया ! (प्रकट) क्षमा कीजिए, राणा जी ! नाटक में स्त्री-पार्ट खेलने के कारण मैं अपने लिए स्त्रीलिंग का प्रयोग कर बैठती—ओह ! फिर वही !—नहीं, नहीं—कर बैठता हूँ !

(सब युवक की ओर संदेह की दृष्टि से देखते हैं)

शक्तसिंह—(स्वगत) हो न हो, यह अवश्य कोई लड़की है ! और मुझे तो यह किरणमयी ही मालूम देती है। अन्यथा मेरी अंतरात्मा इसके प्रति इतनी स्नेहार्द्र क्यों हो रही है ! मन चाहता है कि इसे एकदम गोद में बैठा लूँ ! अच्छा तो यों पूछूँगा। (प्रकट, युवक से) युवक ! क्या तुम बता सकते हो कि पृथ्वीराज का और तुम्हारा क्या संबंध है ?

युवक—वे मेरे प्राण ··नहीं, नहीं—मेरे स्वामी हैं।

शक्तसिंह—बेटी ! किरणमयी ! क्यों मुझसे छल खेल रही हो ? तुम क्यों अपने को छिपा रही हो ? (यह कहकर युवक को गोद में लेने के लिए एकदम आगे बढ़ता है)

युवक—पिता जी ! (यह कहते ही अपना पुरुष-वेश हटा शक्तसिंह के चरणों में गिर पड़ती है)

लिए मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ। मैं आपसे पहले ही कह चुकी थी कि मेरा मन अब वहाँ से उखड़ चुका है। आपने उसका कारण पूछा था, किंतु मैंने, तब न बताकर, फिर बताने के लिए कहा था। आज वह दिन आ पहुँचा है, जब कि मैं राणा जी, पिता जी, सब राजपूत सरदारगण और आपके संमुख अपने मन उखड़ने का कारण बताऊँगी (यह कहती-कहती मारे क्रोध के थरथर कॉपने लगती है)

प्रताप—(स्वगत) प्रतीत होता है कि कोई बहुत बड़ी बात हो गई है! अन्यथा यह प्रतिहिंसा का भाव इसके चेहरे पर एकाएक ही क्यों झलकने लगता! (प्रकट) बेटी! प्रतीत होता है कि तुम्हारे हृदय पर कोई बहुत गहरी चोट लगी है, जिससे कि तुम क्रोधावेश मे थरथर कॉपने लगी हो।

(किरणमयी अंगारे के समान लाल-लाल ऑखें निकाले गंभीर-मुद्रा धारण किए चुपचाप खड़ी रहती है)

शक्तसिंह—किरणमयी! इस तरह कब तक चुप खड़ी रहोगी? ठीक-ठीक बताओ, तुम्हारे मन उचटने का क्या कारण है? कही तुम नौरोज के मेले मे तो नहीं चली गई थी?

('नौरोज' का नाम सुनते ही सब के कान खडे हो जाते हैं)

किरणमयी—(मारे क्रोध के होठ चबाती हुई पृथिवी पर पैर पटक कर) पिता जी! मत पूछो, मुझसे, उस दिन की बात! (कटि मे से एकदम कटार खीचकर) यदि यह मेरी (कटार को चूमती हुई) प्यारी कटार मेरी सहायता न करती, तो मैं भी, अपनी भाभी की तरह, संभव है, अपने धर्म से हाथ धो बैठती।

(शक्तसिंह क्रोध मे एकदम उछलकर तलवार खीच लेता है)

शक्तसिंह—क्यों पृथ्वीराज ! आपने इस अपमान को कैसे सहा ? अच्छा ! आपको तो अपनी कविता से ही अवकाश नही मिलता होगा !

पृथ्वीराज—आपको बिना सोचे-समझे ऐसा व्यंग्य नहीं कसना चाहिए ! इनके मुँह से तो मैंने भी अभी यह बात सुनी है ! इतने दिनों तक इन्होंने यह बात अपने हृदय मे ही छिपाए रक्खी ! मैंने इन्हे कभी-कभी उदास देखकर उसका कारण पूछा भी, किंतु ये सदा टालती ही रही। मुझे कदाचित् इस बात का कुछ भी ज्ञान होता, तो मै अवश्य इसका अभी तक कुछ न कुछ उपाय कर डालता।

प्रताप—भाई शक्त ! इसमे किसी का दोष नही। यह सब हमारे संगठन की कमी है। यदि हम सब राजपूत परस्पर संगठित होते, तो हमे ऐसी नीचता-पूर्ण बाते कभी भी सुनने को न मिलती और हम एक नए ही संसार मे विचरण कर रहे होते ! परंतु अब तो दुःख के साथ केवल यही कहना पड़ता है कि शायद दैव को ऐसा अभीष्ट नही था ! यह सब हमारे कर्मो का ही फल है ! हम बबूल बोकर आम खाने की इच्छा रखते है ! कुकर्मों की हिम-वर्षा मे सुफल-कमल की अभिलाषा करते हैं ! असद्भावना की पतझड़ मे पल्लवित होना चाहते है ! भला, यह कब हो सकता है ! भगवान न्यायशील है, वह अन्याय क्यों करने लगा ! किंतु अब निराश होने की कोई बात नही है। यह जीवन एक संघर्ष है। संघर्ष और उत्ताप की अग्नि मे उत्तप्त होकर जीवन स्वर्ण के समान चमक उठता है। शत्रु-मंडल मे बसकर मनुष्य को अपने पराये का भेद-ज्ञान हो आता है। सृष्टि का यह एक नियम है कि जो वस्तुएँ, जिनमें कुछ भी तरी वर्तमान है, परस्पर टकराकर,

पृथक् पृथक् होकर, इधर उधर चक्कर काटकर जितने वेग से आकर आपस मे मिलेगी, उनका संगठन उतना ही सुदृढ़ हो जायगा और वह फिर सहज ही हिलाए नही हिलेगा।

पृथ्वीराज—राणा जी ! मै प्रण करता हूँ कि अपने कवित्व की संजीवनी से मै मेवाड़ की मृत-देह मे फिर से प्राणों का संचार करने मे ही अपने जीवन की भेंट चढ़ा दूँगा !

शक्तसिंह—(तलवार उठाकर) यह सेवक भी पापी अकवर को अब शाति की साँस नहीं लेने देगा !

कृष्ण—मुझे यदि यह पता हो जाता कि—दुर्वृत्त अकबर का इतना हौंसला बढ गया है कि राणा के कुल की बालिका को भी उसने धर्म-भ्रष्ट करना चाहा था, तो मै सच कहता हूँ कि—प्राणों की बाजी लगाकर, क्षत्रियों के स्वभाव के विरुद्ध छल-कपट खेलकर भी, उसका सिर काट कर दिखा देता !

भामाशाह—बूढ़ा भी कुछ उपद्रव किए बिना न रहता !

शोणिगुरु—कितनी लज्जा की बात है कि इस दुराचार का अभी तक बदला नही लिया गया !

किरणमयी—मै अपने धर्म की शपथ खाकर कहती हूँ कि यदि मुझे पूजनीयों की आज्ञा मिले, तो मै समस्त यवन-साम्राज्य को चंडी बनकर विध्वस्त कर सकती हूँ और यह सिद्ध करके दिखा सकती हूँ कि हम स्त्रियाँ अबलाएँ नहीं, साक्षात् शक्ति-स्वरूपिणी है !

प्रताप—वीर पुत्री ! प्रताप जब प्रताप-हीन हो जायगा, तो ऐसा भी कर लेना। किंतु यह हमारे लिए कलंक की बात है कि हम क्षत्रियत्वाभिमानियों के होते हुए एक क्षत्रिय-बालिका को

इस प्रकार का इरादा करना पड़े। कहिएगा, आप लोगों की इसमे क्या राय है ?

सब—हम लोग अपना अपना विचार प्रकट कर चुके है। अब तो बस हम आपकी आज्ञा के भूखे हैं।

प्रताप—जैसी आप लोगों की इच्छा।

सब—जय, राणा प्रतापसिंह की जय।

(सब का प्रस्थान)

पटाक्षेप

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—देवीर के समीप का वन, क्षत्रिय-शिविर

(कमर मे तलवार बाँधे और हाथ मे भाला लिए प्रताप
तथा शस्त्रास्त्र-सुसज्जित सरदारों का प्रवेश)

प्रताप—वीर सरदारो ! आज वह दिन आ गया, जिसकी हम चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहे थे। आज ही के लिए हमने अपनी वीर माताओं का दूध पिया था। 'वीर राजपूतों के रहते विदेशियों ने मातृ-भूमि पर अधिकार कर लिया' आओ, आज इस अमिट कलंक को प्राणों पर खेलकर अपने रक्त से सदा के लिए धो डाले। वीरो ! 'आते हुए आततायी को देखकर बिना विचार किए ही मार डालना चाहिए' आओ, इस नीति का आज दिल खोलकर पालन करे। आज हम सब को, इस नश्वर शरीर का मोह छोडकर, उसकी एक एक बूँद विधर्मी विदेशियों को मार भगाने मे व्यय करनी होगी। तभी हम मातृ-भूमि का उद्धार कर सकेगे।

सब सरदार—हम सब विदेशी राजा के विशाल साम्राज्य

की नीव उखाड़ फेकने की शपथ लेते हैं।

प्रताप—प्यारे सरदारो ! क्या आप लोग स्वदेश पर यवनों के अत्याचारों और कुल-स्त्रियों को नष्ट होते देखते रहेंगे ? क्या आप लोग सहस्रों निरपराध युवक-युवतियों के अकारण खून को आँखे फाड़ फाड कर देखते रहेंगे ?

सब सरदार—(क्रोधोन्मत्त होकर) नही, कभी नही । हम आज सूद-सहित इन सब अत्याचारों का बदला चुका लेगे । अथवा रण-यज्ञ मे इस तुच्छ जीवन की आहुति दे देंगे।

प्रताप—(पुलकित हो, आँखों मे हर्ष के आँसू भर कर) वीरो ! आप लोगों के इन उत्साह-पूर्ण वचनों को सुनकर मेरा रोम रोम हँस रहा है ! आज आप लोगों को मेवाड़ के गौरव-रवि को विडंबित करने वाली यवन-मेघमाला को शस्त्रास्त्रों के प्रभंजन से छिन्न-भिन्न कर देना होगा । तभी आप लोगों को मातृ-भूमि अपने अंक मे स्थान देगी और मेवाड की जनता आनंद-सागर मे गोते लगाती हुई दृष्टि-गोचर होगी।

सब सरदार—(तेजी से तलवार खींच कर) जय हो मातृ-भूमि की। जय हो महाराणा प्रताप की।

प्रताप—वीरो ! महाराणा प्रताप की जय की आवश्यकता नही । सब एक बार ऊँचे स्वर मे बोलो—'जननी जन्म-भूमि की जय'।

सब—जननी जन्म-भूमि की जय ।

(सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

स्थान—देवीर के समीप एक गाँव की गली

समय—संध्या

(कवि पृथ्वीराज गाते हुए चले जा रहे है)

(गाना)

वीरो ! रख लो माँ की लाज ।
टूट पड़ा है इस सोने की चिड़िया पर हा ! बाज ॥
चलो समर में साथ हमारे सजकर सब रण-साज ।
मातृ-भूमि भी बुला रही है निज सिंहों को आज ॥
बाप्पा रावल कुंभा जैसे यहाँ हुए मृग-राज ।
तुम भी तो संतान उन्हीं की करो उन्हीं-से काज ॥
मातृ-भूमि का डोल रहा है डगमग हाय ! जहाज ।
मिलकर सब ही पार लगाओ, तजकर सारे व्याज ॥
अकबर-सेना-नलिनी-कुल को दल दो बन गज-राज ।
नेता तुम्हें प्रताप मिले है, उठ ओ ! शूर-समाज ॥

(राणा प्रताप का नाम सुनते ही सैकड़ों ग्रामीण अपनी रोटियाँ छोड-छोड कर घरो से बाहर आ जाते हैं और उनकी तलवारे म्यान से बाहर निकल आती है । सहसा उनका प्रधान पृथ्वीराज को पुकारता है)

प्रधान—कवि जी ! जरा सुनिए तो । कहाँ हैं, हमारे राणा ? हमे कहाँ उनसे जाकर मिलना चाहिए ?

पृथ्वीराज—(समीप आकर)

चढ़ जाओ, देवीर पर, इन असियों के साथ।
वहीं मिलेंगे वे तुम्हें, हिंदू-कुल के नाथ॥

(सब का 'राणा प्रतापसिंह की जय' कहते हुए प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

स्थान—देवीर की रण-भूमि का एक भाग

(भीमसिंह का कुछ सैनिकों के साथ प्रवेश)

भीमसिंह—आज का आक्रमण भी खूब रहा! हजारों विदेशी पृथिवी पर पड़े छटपटा रहे हैं! वीर राजपूतों की तलवारों और भीलों के मर्म-भेदी बाणों से सब वैरी छिन्न-छिन्न हो गए! (नेपथ्य की ओर देखकर) जरा आप लोग उधर तो देखें—उधर तो हमारी अब तक दृष्टि ही नहीं गई थी—भीलों की वीर स्त्रियाँ और राजपूत वीरांगनाएँ विदेशियों पर कैसी भयंकर पाषाण-वृष्टि कर रही हैं! और वह देखो, राजकुमारी किरणमयी वीर-वेष में घोड़े पर चढ़ी हुई सब को युद्ध के लिए प्रोत्साहित कर रही है! सैकड़ों वीर भौंचक्के होकर उनके युद्ध-तांडव को देख रहे हैं! कितनों के ही सिर फट गए, कितने ही सदा के लिए सो गए और सहस्रों पृथिवी पर पड़े थिरक रहे हैं! (गौर से देखकर) ओ! वह देखो, विदेशियों की नवीन सेना आ पहुँची! चलो, जल्दी चलो। हम चलकर उसके वेग को रोकते हैं! बोलो, जननी जन्म-भूमि की जय।

सब—जननी जन्म-भूमि की जय।

(सब का शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

चौथा दृश्य

स्थान—रणभूमि का एक अन्य भाग

(सैनिको सहित हताश शाहबाजखॉ का प्रवेश)

शाहबाज़ख़ाँ—काफ़िरों ने अचानक ही हमला कर दिया! हमारी सारी फौज तितर-बितर हो गई! छाता टूटकर एक ओर जा पड़ा! और मुझे जान बचाने के लिए इधर भाग कर आना पड़ा! ओह! यह स्याही का धब्बा अब कैसे मिटेगा! इससे अच्छा तो मै मेवाड मे आता ही नहीं! लेकिन मुझे इस बात का स्वप्न मे भी ख़याल नही था कि राजपूतों की औरते भी इतनी दिलेर होती हैं। उन्होंने तो बात की बात मे हमारे हजारों फौजियों के सिर फोड डाले। पर बहादुरो! इस तरह कैसे काम चलेगा! अब भी वक्त है। आओ, लौट चले और दुश्मनों का डटकर मुक़ाबला करे। ऐसे जीने से मर जाना बेहतर है।

सैनिकगण—सिपहसालार साहब! आपका फर्माना बिलकुल ठीक है। आइए, एक बार जान लड़ाकर राजपूतों से लोहा ले।

(सब का 'अल्लाह हो अकबर' चिल्लाते हुए प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—रण-भूमि का एक अन्य भाग

(गोविंदसिंह और चूड़ावत कृष्णसिंह का क्षत विक्षत वेष मे प्रवेश)

गोविंदसिंह—कृष्ण जी ! यह आपके बाएँ हाथ मे तो बड़े जोर से खून निकल रहा है !

कृष्णसिंह—हॉ, गोविंदसिंह जी ! इसमे मुगलों की एक गोली लग गई थी।

गोविंदसिंह—तो आप इसके पट्टी क्यों नही बॉध लेते ?

कृष्णसिंह—अभी पट्टी बॉधने का अवकाश कहाँ ? मैं तो इधर राणा जी को देखने आया था। बहुत देर से उनका कुछ समाचार नहीं मिला।

गोविंदसिंह—ऐसा जान पडता है कि वे शाहबाज़ख़ाँ को ढूँढते हुए किसी ओर निकल गए है !

(गुप्तचर का प्रवेश)

कृष्णसिंह—कहो, गुप्तचर ! महाराणा का क्या संवाद है ?

गुप्तचर—(अभिवादनपूर्वक) वीर सरदार ! काली घटा का आवरण सूर्य-मंडल को चारों ओर से घेर ही लेता है, किंतु वह शीघ्र ही उस सघन घन-घटा को अपनी तीक्ष्ण रश्मि-माला से विच्छिन्न कर अपने पूर्ण प्रकाश का विस्तार करता है। ठीक इसी प्रकार महाराणा को भी विदेशी विधर्मियों की घोर घटा बार-बार ढक लेती थी, पर महाराणा के उग्र प्रताप के आगे वह अधिक समय तक टिक ही नहीं पाती थी।

गोविंदसिंह—इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि महाराणा वैरियों के व्यूह में फँस गए थे !

गुप्तचर—ठीक है, परंतु वे कुछ ही क्षणों मे उस व्यूह को तोड़कर बाहर आ गए और यवन-सेना उनके रौद्ररूप को देख भाग खड़ी हुई।

कृष्णसिंह—अच्छा, आगे ?

गुप्तचर—तब, ज्यों ही यवन-सेनापति शाहबाजखॉ ने अपनी भागती हुई सेना को ललकार कर यह कहा कि—कायरो! किधर भागे जा रहे हो ? या तो आज काफिर प्रताप को पकड लो या मार डालो, नही तो तुम्हे फॉसी पर लटका दिया जायगा'—उसी क्षण सारी की सारी यवनसेना 'अल्लाह हो अकबर' की भीषण गर्जना करती हुई एक साथ उस देदीप्यमान 'तेजोराशि' को बुझाने के लिए टूट पडी।

गोविंदसिंह—अहह! तब फिर ?

गुप्तचर—तब फिर क्या था ? बस, जब महाराणा ने भली भाँति यह समझ लिया कि बिना शाहबाजख़ॉ का संहार किए उन की जय दुर्लभ है, तो वे उग्र विद्युत्खंड के सदृश कडकते हुए, यवन-सेना को मध्य से चीरते हुए, सीधे शाहबाजख़ॉ को लक्ष्य करके अति तीव्र गति से आगे बढ़े।

कृष्णसिंह—कहते जाओ, रुको नही।

गुप्तचर—उसके अनंतर जब विदेशी सैनिकों ने देखा कि महाराणा उनके सेनापति की ओर सिंह-गति से बढते जा रहे है, तो उनके झुंड के झुंड महाराणा पर टूट पड़े।

दोनों—ओह! तब फिर ?

गुप्तचर—उसके अनंतर ज्यों ही राजपूत-सैनिकों की दृष्टि उस दृश्य की ओर गई, तो वे भी 'हर हर महादेव' 'जननी जन्मभूमि की जय' 'हिंदूपति महाराणा प्रतापसिह की जय' इस प्रकार

भयंकर ध्वनि करते हुए महाराणा की सहायता को एकदम आ पहुँचे।

दोनों—(उत्सुकतापूर्वक) तब फिर ?

गुप्तचर—बस, फिर क्या था ! विदेशी-सैनिकों से राजपूत-सैनिक भिड गए और महाराणा के वज्र-तुल्य खड्ग की असह्य चोट और भाले के निरंतर प्रहार से शत्रु-सेना मे हाहाकार मच गया और वह शीघ्र ही मैदान छोडकर भाग पड़ी।

दोनों—(हर्षपूर्वक) फिर क्या हुआ ?

गुप्तचर—इतने मे ही कवि पृथ्वीराज के भेजे हुए नवीन सैनिक भी भीलों के साथ आ पहुँचे। उन्होंने आते ही हथियारों और तीखे तीरों की मार से असंख्य वैरियों को मृत्यु की गोद मे सुला दिया। और अंत मे महाराणा शाहबाज़खाँ के संमुख पहुँच ही तो गए !

दोनों—तब फिर ?

गुप्तचर—तब, राणा की लाल लाल आँखें, चढ़ी हुई त्योरियाँ, दमकता हुआ मुख-मंडल और हाथ मे लपलपाती तलवार को देखकर शाहबाजखाँ की रूह काँप गई ! और वह पीठ दिखाकर भागना ही चाहता था कि महाराणा ने उसे फिर युद्ध के लिए ललकारा और कहा—'शाहबाजखाँ ! क्यों कायरों की तरह युद्ध-भूमि से भागने के लिए बेचैन हो रहा है ? क्या तू भी मानसिंह की तरह भागकर प्राण बचाना चाहता है ? इने-गिने राजपूतों के आगे से जान छिपाकर भागने मे तुम लोगों के टिड्डी दल को शरम नही आती ? जाओ, निर्लज्जो ! नरक के कीड़ो ! तुम्हारा धर्म यदि तुम्हे यही सिखाता है, तो भाग जाओ और इस वीर-भूमि को छोड़कर औरतों के दामन मे जा छिपो ! तुम्हें बहिश्त मिलेगा !

दोनों—खूब, महाराणा ! खूब ! अच्छा, फिर ?

गुप्तचर—महाराणा के इन उत्तप्त वचनों ने शाहबाजखाँ को युद्ध करने के लिए विवश कर दिया । और वह, आघात पाए हुए सर्प के समान फुंकार भरता हुआ, वायु-वेग से महाराणा पर झपटा !

दोनों—(चिंता का भाव प्रकट करते हुए) अच्छा, फिर ?

(सहसा खून मे लथपथ प्रताप
का प्रवेश)

सब—(महाराणा की ओर देखकर सिर झुकाते है)

प्रताप—वीरो ! आज बहुत दिनों बाद देवीर के किले पर लाल राष्ट्रीय झंडा फहराने का सुअवसर मिला है ! (नेपथ्य की ओर इशारा करके) वह देखो, तुम्हारा अभिमान वायु-तरंगों मे किस प्रकार तरंगित हो रहा है ! दुष्ट शाहबाजखाँ जी तोड़कर लड़ा, पर अंत मे तलवार के घाट उतार दिया गया ! किंतु अभी हमे बहुत काम करना है ! कमलमीर आदि अनेक दुर्ग हस्तगत करने है ! पर यह सब कुछ करने से पहले, आओ, एक बार सब मिलकर स्वातंत्र्य-गान गाएँ, जिसका एक एक स्वर स्वदेश के समस्त वायु-मंडल मे स्वतंत्रता की लहर उत्पन्न कर दे !

(राणा प्रताप सब के बीच मे दोनो हाथ जोड़े खड़े हैं। उनके
दाएँ बाएँ सामंत, सरदारगण विद्यमान हैं।
सब मिलकर गाते है)

(गीत)

कर लो अपना देश स्वतंत्र।
रहने पावे क्यों पर-तंत्र!

मन में जिसके आग लगी हो माता के दुख हरने की,
ठान रखी हो जिसने रण में उसके हित ही मरने की,
आ जावे वह साथ हमारे, तज सब दुनिया के धंधे;
भारत-माता दीन हुई है, बनते हो क्यों फिर अंधे?

फूँको आजादी का मंत्र।
रहने पावे क्यों पर-तंत्र!

दूर-देश से आकर लूटें हाय! लुटेरे, तुम देखो!
फूटी क्यों न तुम्हारी आँखें, जो तुम जननी-दुख लेखो!
आओ, वीरो! शीघ्र चलें हम, कायरता का काम नहीं;
प्रण है—अरि को बिना भगाए हमको भी आराम नहीं॥

चाहे खंडित हो यह यंत्र!
रहने पावे क्यों पर-तंत्र!

(दूत का शीघ्रतापूर्वक प्रवेश)

प्रताप—कहो, दूत! इतनी शीघ्रता मे क्यों हो?

दूत—(अभिवादन करके) महाराज! महावतखाँ ने बड़ी भारी सेना के साथ 'भीम-सरोवर' के दुर्ग पर आक्रमण कर दिया है। छोटे राणा के पास कुल एक हजार सैनिक हैं। उन्होंने अभिवादन-पूर्वक कहा है कि शीघ्र ही दुर्ग की रक्षा के लिए कुछ प्रबंध करें, तब तक मैं शत्रुओं के वेग को रोकूँगा।

प्रताप—उनसे कहो कि हम अभी आ रहे है। घबराने की कोई बात नही।

दूत—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

प्रताप—गोविंदसिंह जी ! आप चूड़ावत कृष्ण जी के साथ दो हजार सैनिक लेकर चले जाइए। मै भी एक हजार सैनिक और कुछ सरदारों के साथ देवीर की रक्षा का प्रबंध करके अभी आता हूँ। एक ओर से आप आक्रमण करना, दूसरी ओर से मैं पहुँच जाऊँगा।

(गोविंदसिंह और चूडावत कृष्ण का प्रस्थान)

(भीमसिंह और भीलराज का प्रवेश)

दोनों—(अभिवादनपूर्वक) महाराज ! सुना है, मुगलों ने दस बारह हजार सेना लेकर 'भीम-सरोवर' दुर्ग पर आक्रमण कर दिया है।

प्रताप—हाँ, ठीक है। शक्तसिंह ने अभी दूत भेजा था। मैंने गोविंदसिंह और चूडावत कृष्ण को दो हजार सैनिकों के साथ वहाँ भेज दिया है। मैं भी अब एक हज़ार सैनिक लेकर जा रहा हूँ। आप लोग यहाँ सावधान होकर दुर्ग और बाल-बच्चों की रक्षा करना।

भीलराज—महाराज ! रानी जी शाहबाजखाँ की मृत्यु का समाचार पाकर बहुत प्रसन्न है। उसके कारण कई साल तक एक स्थान पर चैन से नही बैठ सके और कई बार तो बनी बनाई रोटी छोडकर तत्काल भागना पड़ा था।

प्रताप—भीलराज ! देश-सेवकों के मार्ग मे काँटे ही काँटे होते हैं ! उन्हे निरंतर भयंकर अग्नि-परीक्षा मे होकर गुजरना पड़ता है ! आशा और निराशा के हिडोले पर ही झूलते रहना पड़ता है ! अनेक बार तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि सदा संध्या-काल ही बना रहेगा ! किंतु उन दुःखों मे, उन तपस्याओं मे, अत्यंत सूक्ष्मरूप से—अज्ञातरूप से—सुख की पवित्र आभा छिपी रहती है, जिसका अनुभव करते हुए देश-भक्त अपने लक्ष्य की ओर अविराम-गति से बढ़ते चले जाते है और अंत मे एक सुंदर वासंतिक प्रभात का दर्शन होता है। (भीमसिंह से) अच्छा, भीमसिंह ! अब हम जाते हैं । तुम भीलराज के साथ देवीर की रक्षा मे तत्पर रहना।

दोनों—जो आज्ञा।

(सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

छठा दृश्य

स्थान—मेवाड का एक नगर, चतुष्पथ

समय—प्रभात

(कुछ कुमारो का परस्पर बातचीत करते हुए प्रवेश)

पहला—यार ! आज कल युद्ध का बड़ा कोलाहल मच रहा है। जिधर देखो, उधर खाते-पीते, उठते-बैठते युद्ध की ही चर्चा छिड़ी रहती है !

दूसरा—क्यों, तुम्हे यह चर्चा अच्छी नही लगती ? मुझे तो युद्ध की बाते सुनकर बडा आनंद आता है।

तीसरा—आता होगा, हमने तो तुम्हे लड़ाई की चर्चा छिडते ही काँपते देखा है।

दूसरा—चाहे कोई किसी कारण से कॉपता हो ! चाहे उसे सरदी ही क्यों न लग रही हो। तुमने तो मुँह उठाकर कह दिया कि लड़ाई की चर्चा छिडते ही काँपते देखा है ! सब को अपने जैसा ही समझते हो ?

तीसरा—इसमे चिढने की क्या बात है। जो सरदी के कारण कॉपा करता है, वह तो कँपकँपी के साथ 'सी-सी' किया करता है। पर तुम्हे तो हमने 'सी-सी' करते कभी देखा नहीं !

दूसरा—बस, रहने भी दो। अधिक बक बक नही किया करते !

तीसरा—बुरा मानो या अच्छा, मै तो सच्ची बात कहा करता हूँ।

पहला—अच्छा, सत्यवादी जी। अब रहने भी दीजिए। युद्ध की बात करते-करते आपस मे ही लड़ने लगे।

तीसरा—चोर का भाई गठकटा। तुम भी उसी का पक्ष लेने लगे ?

पहला—हमने तो भाई। तुम्हे भी अब तक कहीं वीरता दिखाते नही देखा, जिससे कि इतनी बढ़-बढकर बाते कर रहे हो।

दूसरा—बच्चू अपनी राजपूती के घमंड मे होगा, जिससे कि ऐसी बाते बना रहा है।

तीसरा—हॉ, राजपूती के घमंड मे तो है ही ! राणा प्रताप भी तो राजपूत ही हैं, जो विदेशियों से लोहा ले रहे हैं, और जिन्होंने उनके छक्के छुडा दिए है !

पहला—राणा प्रताप या उनके इने-गिने सरदारों को छोड़कर और किसी का नाम भी बता सकते हो ?

दूसरा—हॉ, हॉ, बताते क्यों नही ? चुप क्यों हो गए ?

चौथा—जब कोई है ही नहीं तो क्या बताएँगे !

पाँचवाँ—भाई ! तुम भी इन दोनों की ओर ही हो गए ! राजपूत-भैय्या को अकेले ही छोड़ दिया !

चौथा—नहीं, अकेले क्यों ! तुम हो तो गए दूसरे !

पहला—भाई ! अकेले छोड़ने का मतलब नही ! इन्होंने बात ही उलटी छेड़ दी ! आ गए झट राजपूती के घमंड मे ! और लगे आक्षेप करने ! आप ही बताइए, किसी पर व्यर्थ ही बात की बात मे आक्षेप करना अच्छा थोड़े ही है !

दूसरा—भाई ! आप आक्षेप की बात जाने दे । आखिर इन्हें बताना तो चाहिए कि क्या एक के बहादुर होने से सभी बहादुर हो जाते है ! हो गए अकेले राणा प्रताप ! हम उनका सम्मान करते हैं ! पर क्या अकेले वे ही राजपूत हैं ? राजपूत तो और भी राजपूताने मे लाखों, करोड़ों भरे पड़े हैं ! और साधारण राजपूतों की भी बात जाने दीजिए । राजा भगवानदास, बिहारीमल, टोडरमर्ल, मारवाड़पति, बीकानेर-नरेश, ग्वालियर के राजा, चंदेरीपति, मानसिह, शक्तसिंह, सागरसिह और न जाने और कितने राजा और सिंह देश-द्रोही बने हुए हैं और विदेशी विधर्मियों के हित-चिंतक बनकर उनके पैर चूम रहे हैं ! शक्तसिंह

की बात तो खैर जाने दीजिए ! उन्हे तो भगवान ने समय पर सुमति प्रदान कर दी । और वे अपने भाई से आ मिले । पर और सब राजपूतों की दशा पर जरा विचार कीजिए कि वे कितने पतित हो चुके है ! अपनी बहन-बेटियों को किस तरह विधर्मियों की बलि चढ़ा देते है ! अदला-बदला हो, तब भी बात मान ली जाय । पर यह तो एकपक्षीय बात है ! और मानसिह ने तो अपनी बहन, अभी कुछ दिन हुए, सैकड़ों बेगमों वाले सलीम की भेट चढ़ा दी है !

पाँचवाँ—पर भाई ! इसमे अपराध किसका है ? मेरे तुच्छ विचार मे तो इसमे भी अपराध राजपूतों का ही है । वे यवन-कुमारियों को लेना पसंद ही नही करते ।

पहला—भाई ! यह फिलॉसफी हमारी समझ मे तो आती नही । तभी हिंदू कमजोर होते जा रहे है । इनसे नसल बनाना ही नहीं आया । जितने दूर देश की और जितने विभिन्न रक्त की कन्या का पाणि-ग्रहण किया जाय, मेरे विचार मे तो उतना ही अच्छा है । इसमे कोई हानि नही । इससे हम हिंदुओं मे नव रक्त का संचार होगा । भावी संतान सुंदर, सुडौल, सुदृढ, चतुर और कर्मशील उत्पन्न होगी । जो जातियाँ, हमारे देश मे, अब भी व्यर्थ के मन-घडंत धर्म-बंधन का व्यर्थ विचार न करके विवाहादि संबंध स्थापित करती है, हम उन्हे अपेक्षाकृत उन्नत पाते हैं । और फिर यह कौन-से शास्त्र मे लिखा है कि यवन-कन्या या म्लेच्छ-किशोरी का पाणि-ग्रहण नही करना चाहिए । शास्त्र तो उलटा यही कहता है कि—'युवती-रत्न, चाहे नीच-कुल मे ही क्यों न उत्पन्न हुआ हो, ग्रहण करने योग्य है' । क्या इसी शास्त्र के अनुसार धीवर-कुमारी सत्यवती और राजा शांतनु की परस्पर

विवाह नहीं हुआ था ? कौरवों, पांडवों को आज कौन वर्ण-संकर कहने का दुःसाहस कर सकता है ? और सम्राट् चंद्रगुप्त जैसा पराक्रमी और कौन हुआ है, जिसने विश्व-विजयी सिकंदर तक को परास्त किया था और उसका सेनापति सिल्यूकस जिसे अपनी कन्या तक दे गया था ?

पाँचवाँ—भाई ! बिलकुल ठीक कहते हो। भारत के भाग्य जागेंगे, तो फिर ये व्यर्थ के भेद-भाव सहसा विलुप्त हो जायँगे।

तीसरा—भाई राजेश्वर ! तुम्हारी बात तो कुछ कुछ मेरी भी समझ मे आने लगी। हम लोगों मे सचमुच ही परस्पर प्रेम-संबंध स्थापित करने और दूसरों को अपने भीतर समा लेने की शक्ति नही। हम घृणा करना जानते हैं, प्रेम नहीं। सुना है, राजा बीरबल से अकबर ने अनेक बार हिंदू-धर्म मे दीक्षित होने का विचार प्रकट किया है, किंतु उन्होंने माना ही नही। वैसे अकबर के आगे प्रति दिन सिर झुकाते है और उनका अन्न खाते हैं, पर वास्तव मे समझते है उसे म्लेच्छ। हम हिंदुओं की यदि इतनी उलटी खोपड़ी न होती, तो हमे कहता ही कौन ! भला आदमी यदि अकबर की बात मान जाता, तो राणा प्रताप भी, जो बीसों वर्ष से अपने बीबो-बच्चों के साथ अनेक कष्टों का सामना करते हुए भी देश की मान-रक्षा के लिए अकबर से युद्ध ठाने हुए हैं, विश्राम करते, और चारों ओर महायुद्ध के घुमड़ते हुए बादल न दीख पड़ते ! और भारत उन्नति के उत्तुंग शिखर पर आरूढ़ हुआ दृष्टिगोचर होता ! चारों ओर प्रेम का अद्भुत साम्राज्य फैला हुआ होता ! हिंदू और यवन दोनों एक ही पिता के पुत्र समझे जाते ! और भविष्य मे भी किसी तीसरी शक्ति को बीच में हस्तक्षेप करने का अवसर हाथ न आता !

पाँचवाँ—अच्छा भाई ! अब इन बातों से क्या लाभ ? इनका तो अब समय ही निकल गया ! अब तो हमने सुना है कि महाराणा प्रताप के दस-दस बारह-बारह साल के बच्चे भी शत्रुओं के विरुद्ध तलवार पकड़ने का निश्चय कर चुके है। हमे भी चाहिए कि हम भी उस बाल-सेना मे भर्ती होकर स्वदेश की बंधन-शृंखलाओं को तोडने मे उनकी सहायता करे ! यह समय भी बहुत उपयुक्त है। शत्रु भी इस समय पंजाब की लडाइयों मे व्यस्त है।

पहला—मैंने सुना है कि महाराणा प्रताप ने, शत्रु की इस परिस्थिति से लाभ उठाने के लिए ही फिर मेवाड के किलों पर आक्रमण करके उन्हे एक एक करके जीतना प्रारंभ कर दिया है। हम कुमारों का भी कर्तव्य है कि हम भी जननी जन्म-भूमि के अर्थ अपने प्राणों पर खेल जायँ और जब तक उसका वैरियों से उद्धार न कर ले, शांतिपूर्वक न बैठे ! आप लोगों की इसमे क्या राय है ?

सब—हम सब सहमत हैं।

पहला—अच्छा तो आओ, सब मिलकर एक स्वर मे बोले—जननी जन्म-भूमि की जय। महाराणा प्रतापसिह की जय।

सब—जननी जन्म-भूमि की जय। महाराणा प्रतापसिह की जय।

(सब का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

सातवाँ दृश्य

स्थान—अकबर का महल

समय—दोपहर

(अकबर चिंतित अवस्था मे आरामकुर्सी पर बैठा हुआ कुछ सोच रहा है और बीच-बीच में कभी-कभी हुक्का गुड़गुडा लेता है)

अकबर—हुँ ! सुना है, कोमल मीर का किला भी प्रताप ने जीत लिया ! और उसके हाकिम अब्दुल्लाखाँ को मार दिया ! उसकी सारी फौज राजपूतों ने गाजर मूली की तरह काट डाली ! मानसिंह का मशहूर व्यापारी शहर मालपुर भी लुट गया ! उदयपुर पर भी प्रताप ने फिर से कब्जा कर लिया ! (हुक्के की दो एक घूँट भर कर) इस तरह उसने फिर तीसों किले जीत लिए ! सिर्फ चित्तौड, मंडलगढ़ और अजमेर ही बचे हैं ! पहाड़ों, जंगलों का भिखारी फिर मेवाड का राणा बन बैठा ! मै भी इसे दबाने के लिए सारी ताकत लगा बैठा ! राजा मानसिंह, भगवानदास, शाहबाज़खाँ, अब्दुर्रहीम, महावतखाँ और राजा जगन्नाथ न जाने कितनों को सिपहसालार बना-बना कर सैकड़ों तोपों और लाखों फौज के साथ उस बागी को पकड़ने और हमेशा के लिए कुचल डालने के लिए भेज चुका ! पर सब बेकार ! न जाने कहाँ छिपकर बैठ जाता है और फिर अचानक ही एकदम कही से निकल कर हमारी फौज पर सिंह की तरह झपट पडता है और उसकी जान तबाही मे ला देता है ! खुदा इस बला से बचाए ! मेरी तो अक्ल हैरान है ! क्या करूँ (कुछ क्षण ठहर हुक्का गुड़गुड़ा कर) उफ् ! एक बात का तो मुझे खयाल ही नही रहा था ! पृथ्वीराज की उस औरत ने, सुना है, ऊधम ही मचा रक्खा है ! उसने

भीलों और राजपूतों की औरतों की एक छोटी-सी टुकडी इकट्ठी कर ली है और खुद उनकी सरदारनी बन बैठी है। सुना है, देवीर की लड़ाई मे वह भी बिजली बनकर कडकी थी और हमारी कितनी ही फौज भस्म कर डाली थी। और फिर मुझे तो उसका खुद तजुर्बा है! खुदा करे, ऐसी औरत से कभी पाला न पड़े। वैसे है कितनी खूबसूरत! कैसी गुलाब-सी। (गहरी साँस लेकर) पर खुदा को मंजूर ही कुछ और था। अच्छा। (हुक्का गुडगुड़ाता है। हथेली पर मुँह रख कुछ सोचकर) और उसी ने मुझे नौरोज के मेले मे बदनाम किया है! यही कारण है कि बहुत से स्वाभिमानी राजपूत मुझ से नफरत करने लगे है! और मेरे खिलाफ़ बगावत करने पर उतारू हो रहे है। और उधर पंजाब के झगड़े खड़े हो गए है। ऐसी हालत मे मुझे सँभल कर चलना चाहिए। और कोई न कोई ऐसी सूरत निकाल लेनी चाहिए, जिससे प्रताप की तरफ से तो मै बे-फिक्र हो जाऊँ! (कुछ सोचकर) अच्छा, मैने सोच लिया। राजपूत लोगों को यह बात बहुत खटकती होगी कि मै राजपूत राजाओं की लडकियाँ तो ले लेता हूँ, मगर अपने शाही खानदान की लडकी उन्हे कभी नहीं देता। मैने अब तै कर लिया है कि मै अपनी मेहर और दौलत को शाहजादा अमरसिह और छोटे राणा शक्तसिह के साथ ब्याह दूँ! राणा प्रताप इस संबंध को माने या न माने, यह तो उसकी इच्छा है। लेकिन इससे मेरे ऊपर कोई दोष नहीं रह जायगा! अच्छा, मै उस संबंध के बाबत अभी चलकर प्रताप को चिट्ठी लिखता हूँ।

(प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

आठवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुर, प्रताप का निवास-स्थान

समय—रात के दस बजे

(प्रताप और रानी पद्मावती का प्रवेश)

प्रताप—(करुण-स्वर मे) प्रिये ! मैंने तुम्हे भीषण वन-पर्वतों मे घुमा फिरा कर बहुत कष्ट दिया है । आशा है, इसके लिए तुम क्षमा करोगी ।

पद्मावती—नाथ ! आप कैसी बात कहते है ! स्वदेश की रक्षा मे यदि प्राण भी चले जाते, तो कोई बात नहीं थी ! फिर वन-पर्वतों मे अपने स्वामी के साथ घूमते-फिरते रहने मे कौन सी बडी बात हो गई !

प्रताप—प्रिये ! तुम्हारी ऐसी बाते सुनकर मेरे मन को सात्वना कुछ अवश्य मिलती है, परंतु न जाने क्यों, जब कभी भी मेरा ध्यान तुम लोगों की दुर्दशा की ओर चला जाता है, तो मन मे एक टीस सी उठ खड़ी होती है और मै भीतर ही भीतर झुलसने लगता हूँ ।

पद्मावती—प्राणेश्वर ! आपके मुँह से तो मैंने अभी तक ऐसी बाते कभी नही सुनी ! फिर आज सागर अपनी गंभीरता को क्यों त्यागने के लिए उत्कंठित हो रहा है, यह सोचकर मेरा हृदय भी अधीर हो रहा है ।

प्रताप—प्रिये ! मैंने अनेक बार चाहा कि मैं तुमसे तुम्हारे कष्टों के विषय मे कुछ बातचीत करूँ, पर बहुत चाहने पर भी ऐसा उपयुक्त समय कभी हाथ न आया। मैंने कई बार सोचा कि मुझे

क्या अधिकार है कि मैं अपने अभिमान की रक्षा के लिए, देश की रक्षा का बहाना लेकर, अपने कुटुंबियों और संपूर्ण मेवाड़-वासियों का जीवन संकट मे डालूँ ! पर शत्रु की दोरंगी घातक नीति का ध्यान कर उसका मुँहतोड़ उत्तर देने की धुन मे मैं अपने उस विचार को कार्यरूप मे परिणत नही कर सका। इसके लिए मैं तुमसे और उन सब मेवाड़-वासियों से, जिन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान देकर भी इस महान युद्ध मे हमारा साथ दिया है, क्षमा-प्रार्थी हूँ।

पद्मावती—(चरणों मे गिरकर) प्राणनाथ! मैं आज सचमुच आपकी मानस-तंत्री के इन सरल कोमल स्वरों को सुनकर गद्गद हो उठी हूँ। मै अपने भाग्य पर आज फूली नही समाती। अच्छा, आप बहुत थके हुए प्रतीत होते हैं ! अब आपको विश्राम करना चाहिए।

प्रताप—हाँ, प्रिये ! मैं आज बहुत दुर्बलता अनुभव कर रहा हूँ। मुझे तुमसे और भी बहुत सी बाते करनी थीं। वे कल होंगी। अच्छा, जाओ, तुम भी जाकर सोओ।

पद्मावती—जो आज्ञा।

(दोनो का प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

नवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुर, प्रताप का मंत्रणा-गृह

समय—मध्याह्नोत्तर

(चूडावत कृष्ण का अन्य सामंत सरदारों के साथ प्रवेश)

कृष्ण—प्रिय सामंतगण! आप लोगों के अधिक परिश्रम और भगवान भूतभावन की असीम अनुकंपा से हमारे महाराणा ने प्रायः समस्त मेवाड़ का उद्धार कर लिया है। अब केवल दो-तीन दुर्ग ही विजय करने शेष है। ईश्वर ने चाहा तो यह कार्य भी पूर्ण हो जायगा। यदि विलासी जगमल मेवाड़ का राणा होता, तो मेवाड़ की न जाने क्या दुर्गति होती। प्रजा के मन से स्वातंत्र्य की भावना ही उड़ जाती, संपूर्ण प्रजा 'त्राहि, त्राहि' कर उठती, क्योंकि विलासिनी-पुत्र जगमल विदेशी विधर्मी सम्राट् के इंगित पर नृत्य कर रहा होता। अच्छा हुआ, हम सब लोगों की प्रार्थना को हमारे परम कृपालु महाराणा ने स्वीकार कर लिया था। अब प्रजा प्रसन्न है। मेवाड़ की भूमि फिर से उर्वरा हो चली। स्थान-स्थान पर वापी-निर्माण हो रहा है। सुंदर उपवन लगाए जा रहे हैं। राष्ट्र-शालाओं का उद्घाटन हो रहा है और उनमे विधिपूर्वक सैनिक शिक्षा देने के लिए उचित प्रबंध किया जा रहा है। शिल्प-कला और ललित कलाओं के विशेष परिज्ञान के लिए भी उन उन विषयों के विशेषज्ञ भारत के कोने कोने से चुन-चुन कर बुलाए जा रहे हैं। इधर यह सब हो रहा है। परंतु एक कसक अभी हमारे हृदय को सालती रहती है। हम अभी तक चित्तौड़ का उद्धार नहीं कर सके! हमारा प्यारा चित्तौड़ अब भी विदेशियों के हाथ में है! उस पर अब भी विदेशियों का झंडा फहरा रहा है!

सामंतगण—मंत्री जी ! हम तो स्वदेश और अपने मनोनीत नेता महाराणा के पद-चिह्नों पर चलने वाले सेवक है। हमारे महाराणा हमे जिस क्षण चित्तौड़-विजय के लिए प्रयाण करने का आदेश देंगे, हम उसी क्षण उस ओर कूच कर देंगे।

कृष्ण—सामंतगण ! आप ही मित्रों के भरोसे पर यह सब कुछ हुआ है और आगे भी आप लोगों की ही सहायता से और ईश्वर की कृपा से सब कुछ हो जायगा। (कुछ क्षण सोचकर) परंतु, पता नही, महाराणा अभी तक क्यों नहीं आए ? भावी कार्यक्रम पर विचार करना आवश्यक था !

सामंतगण—महाराणा तो नियमपूर्वक सदा जागरूक रहकर अपना कर्तव्य पालन करने वाले प्राणी है ! वे तो हम लोगों के आने से पहले ही आ जाया करते थे ! उनके इस विलंब मे अवश्य ही कोई कारण होगा !

कृष्ण—मुझे तो कल वे कुछ अधिक दुर्बल से दीख पड़ते थे। कदाचित् अस्वस्थ न हो गए हों।

सामंतगण—हो सकता है, ऐसा ही हो।

(एकाएक दुर्बलता का अभिनय करते हुए प्रताप का प्रवेश।
सब उठकर प्रणाम करते है और प्रताप की आज्ञा पाकर
अपने अपने स्थान पर बैठ जाते हैं)

प्रताप—प्रिय सरदारगण ! आज मेरी प्रतीक्षा मे आप लोगों को कुछ देर के लिए बैठा रहना पड़ा, इसके लिए मैं आप लोगों से क्षमा-प्रार्थी हूँ। मेरा स्वास्थ्य कुछ दिनों से ठीक नही है और कल तो मुझे बहुत ही दुर्बलता आ गई थी। इसी लिए मुझे आज

आने मे कुछ विलंब हो गया। आप लोगों को कष्ट तो हुआ होगा किंतु मुझे पूर्ण आशा है कि आप लोग मेरी इस विवशता को क्षमा की दृष्टि से देखने की कृपा करेगे।

सब—आपके इन शालीनता-पूर्ण वचनों से हम सब अनुगृहीत है।

प्रताप—कहिए, कृष्ण जी ! चित्तौड़ से अभी तक कोई समाचार आया कि नहीं ?

कृष्ण—महाराज ! गुप्तचर देवेश्वर को वहाँ भेज रक्खा है। उसका आज यहाँ पहुँच जाने का वायदा है। संभव है, आ ही रहा होगा।

प्रताप—अच्छा, इतना किसी और विषय पर विचार आरंभ कीजिए।

कृष्ण—जो आज्ञा।

(सहसा गुप्तचर का प्रवेश)

गुप्तचर—(अभिवादनपूर्वक) जय हो महाराज की।

प्रताप—कहो, देवेश्वर ! चित्तौड़ का क्या संवाद है ?

गुप्तचर—महाराज ! चित्तौड़ की सारी प्रजा सागरसिंह से असंतुष्ट है। और ..... (कहते-कहते रुक जाता है)

प्रताप—कहो, कहो, रुक क्यों गए ?

गुप्तचर—और ऐसा मालूम हुआ है कि यवन-सम्राट् अकबर भी अब उससे अप्रसन्न है।

प्रताप—अच्छा ?

सामंतगण—क्या बात ?

कृष्ण—बात क्या ! मेरे विचार मे तो भले आदमी ने अकबर से बड़े-बड़े वायदे किए होंगे और पूरा एक भी न कर सका होगा !

गुप्तचर—हाँ हाँ, मंत्री जी ! मैंने चित्तौड़ के अपने अंतरंग मित्रों से, जो कि सागरसिंह से मिलते-जुलते रहते हैं, कुछ ऐसा ही सुना है।

कृष्ण—विलासी पुरुष को अपने वचन का ध्यान कहाँ रह सकता है ! तब तो, भाई देवेश्वर ! ऐसा जान पड़ता है कि सागरसिंह से चित्तौड़ अवश्य छिन जायगा। क्योंकि अकबर जिससे एक बार क्रुद्ध हो जाता है, उस पर उसका थोड़ा बहुत नजला अवश्य ढलता है।

गुप्तचर—आप बिलकुल ठीक कहते है, मंत्री जी ! मानसिंह को जब गोगूंदे मे रहते चार मास बीत गए और वह हमारे महाराणा का बाल भी न बाँका कर सका, तो अकबर ने उसे तथा आसफ़ख़ाँ और काजीख़ाँ को वहाँ से चले आने की आज्ञा लिख भेजी थी और उनकी ड्योढ़ी बंद कर दी थी। उसी क्रोध के कारण अकबर स्वयं शिकार का बहाना लेकर हमारे महाराणा का दमन करने के लिए गोगूंदे आया था, जब कि उसे भी निराश होकर लौटना पड़ा था। और हमारे महाराणा को बंदी न बना सकने के कारण ही शाहबाजख़ाँ की अजमेर की सूबेदारी भी अकबर ने छीन ली थी और उसके स्थान में दस्तमख़ाँ को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया था।

कृष्ण—तब तो ऐसा जान पड़ता है कि अकबर सागरसिंह से चित्तौड़ छीनकर किसी और को अवश्य देगा।

गुप्तचर—यह बात बहुत अधिक संभव है।

कृष्ण—बहुत अधिक संभव क्या, निश्चित ही है। जब मानसिंह आदि के साथ ही अकबर ने ऐसा व्यवहार किया है, फिर सागरसिंह किस खेत का बथुआ है!

गुप्तचर—मेरा भी अभिप्राय यही है।

प्रताप—अच्छा, अब आप जाकर विश्राम करें।

(गुप्तचर का प्रस्थान)

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(प्रणामपूर्वक) महाराज! द्वार पर एक पुरुष खड़ा है। अपने को अकबर का दूत बताता है। महाराज से मिलना चाहता है।

प्रताप—जाओ, जल्दी लिवा लाओ।

कृष्ण—महाराज! आज कई साल बाद अकबर का दूत आया है, इसमें कोई न कोई रहस्य अवश्य जान पड़ता है।

प्रताप—जो होगा, सामने आ जायगा।

(द्वारपाल का दूत को प्रताप के समीप पहुँचाकर प्रस्थान)

दूत—(अभिवादनपूर्वक) मुझे बादशाह ने (पत्र देता हुआ) यह पत्र आपके पास पहुँचा देने के लिए भेजा है और इसका जवाब जल्दी ही माँगा है।

प्रताप—(पत्र पढकर चूड़ावत कृष्ण को देते हुए) मंत्री जी ! यह पत्र लीजिए और पढ़ लीजिए। भोजनानंतर रात्रि के समय इस पत्र को लेकर मेरे पास आ जाना। मेरा मन इस समय अस्वस्थ है। मै विश्राम करना चाहता हूँ। (दूत की ओर इंगित करके) और इनकी भोजनादि की व्यवस्था ठीक-ठीक कर देना। अतिथि-सेवा मे कोई त्रुटि न होने पाय ! अच्छा, अब सभा विसर्जित कीजिए।

(चूड़ावत कृष्ण सभा को विसर्जित करते है।
सब का अभिवादनपूर्वक प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दसवाँ दृश्य

स्थान—अकबर का महल, राजोद्यान

समय—प्रभात

(अकबर आरामकुर्सी पर बैठा हुआ हाथ पर
माथा टेके कुछ सोच रहा है)

अकबर—(सहसा ऊपर मुँह उठाकर) कौन है, यहाँ ?

(पहरेदार का प्रवेश)

पहरेदार—(अभिवादनपूर्वक) मै हूँ हुजूर ! हुक्म कीजिए।

अकबर—जाओ, मियाँ तानसेन को बहुत जल्द बुला लाओ।

(पहरेदार का शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान)

(मानसिंह का प्रवेश)

मानसिंह—(अभिवादनपूर्वक) जहाँपनाह ! राणा प्रताप ने जयपुर पर चढाई करके अच्छा नही किया। इससे मेरी आत्मा को बड़ी ठेस पहुँची है।

अकबर—तो फिर आप क्या चाहते हैं ?

मानसिंह—जहाँपनाह ! मैं चाहता हूँ कि एक बार और पूरी शक्ति लगाकर प्रताप को उसके इस दुःसाहस का मजा चखा दिया जाय।

अकबर—(नैराश्य का भाव सूचित करता हुआ) बस रहने दो, राजा साहब ! न जाने कितनी बार पूरी शक्ति आजमा ली गई, मगर फिर भी तुम उस वीर का कुछ भी न बिगाड़ सके। अब ऐसी बाते करनी फ़िजूल हैं।

मानसिंह—(स्वगत) हजरत खुद भी तो शिकार का बहाना लेकर उसे कैद करने गए थे ! पर ख़ुद ही जाकर उसका क्या बिगाड़ दिया !

अकबर—राजा साहब ! अब आप मेहरबानी करके जाइए और बाहर किसी से कहते जाइए कि सलीम को मेरे पास भेज दे। मेरा सिर इस वक्त चक्कर खा रहा है !

मानसिंह—(अनमना-सा होकर) जो आज्ञा।

(अभिवादनपूर्वक प्रस्थान)

अकबर—दुनिया कितनी मतलबी है ! मेरी सारी बादशाहत मट्टी मे मिली जा रही है ! उसकी तो इसे कुछ परवाह नहीं !

लेकिन जयपुर की बड़ी फ़िक्र है ! मानसिंह ! अगर मुझे यह पता होता कि कांधार से बंगाल तक और इधर गुजरात को जीतने वाला आदमी इस छोटे से मेवाड के राणा के आगे इस तरह भीगी बिल्ली बन जायगा, तो मैं शेर की मॉद में हाथ ही न डालता ! प्रताप के खिलाफ़ तुम्हारी डींगे सुनकर ही मैंने तुम्हे उस पर चढ़ाई करने को भेजा था ! उसमे कोई मेरा खास मतलब नही था !

(मियॉं तानसेन का सितार हाथ में लिए हुए प्रवेश)

तानसेन—(अभिवादनपूर्वक) जहॉपनाह ने मुझे स्मरण किया था। सेवक हाजिर है।

अकबर—हाँ, मैंने आपको याद किया था। मन कुछ बेचैन सा हो रहा है। कोई सुंदर गाना गाओ।

तानसेन—जो आज्ञा। (गाता है)

(गीत)

कर लो जग में सब से प्रेम।
'एक पिता के सुत हम सारे' यह जो रखते ध्यान,
ध्यान सदा उनका रखता है एक वही भगवान।
करता है जो आ इस जग में वैभव पर अभिमान,
कितने दिन तक मिलता रहता उसको जन-सम्मान ?
अपने और पराये में जो करता भेद महान,
कर देता है मानवता का सहसा ही अवसान॥
चाहो सबका कुशल-क्षेम।
कर लो जग में सब से प्रेम॥

दो दिन की इस दुनिया में जो आकर नर हैं लड़ते,
और परस्पर बात-बात मे मद-भूले भिड़ पड़ते,
कभी किसी से कभी किसी से है जो मतवाले अड़ते,
भूल न जाना, निश्चय ही वे घोर नरक में सड़ते।
पान किया है जिसने निर्मल प्रेमामृत का प्याला,
कभी न उसको सता सकेगी दुःख-ताप की ज्वाला॥

बन जावे यह जीवन हेम।
कर लो जग में सब से प्रेम॥

अकबर—मियाँ तानसेन ! तुम्हारे गान ने आज मेरे दिल को काफ़ी तसल्ली दी है।

(पहरेदार का प्रवेश)

पहरेदार—(अभिवादनपूर्वक) जहाँपनाह ! हुजूर का दूत, जिसे हुजूर ने मेवाड चिट्ठी लेकर भेजा था, दरवाजे पर खड़ा है।

अकबर—(उत्सुकतापूर्वक) जाओ, उसे जल्दी भेजो।

पहरेदार—जो हुक्म।

(अभिवादनपूर्वक प्रस्थान)

(दूत का प्रवेश)

दूत—(अभिवादन करके राणा प्रताप का पत्र अकबर के हाथ में देता हुआ) जहाँपनाह ! लीजिए, यह प्रताप का जबाब है।

अकबर—(पत्र हाथ मे लेकर) अच्छा, अब आप लोग जा सकते हैं।

(तानसेन और दूत का प्रस्थान)

(सलीम का प्रवेश)

सलीम—(अभिवादन करके) जहाँपनाह ने मुझे याद फरमाया था।

अकबर—हाँ, सलीम ! मैंने तुम्हे बुलाया था। लो, यह प्रताप का जबाब पढ़ो। (पत्र देता है)

सलीम—(कुछ चौंक कर) ऐं ! प्रताप का जबाब ! तो क्या जहाँपनाह ने उसके पास कुछ लिख भेजा था ?

अकबर—इन बातों को फिर पूछना। अब तो तुम खत पढ़ो।

सलीम—(पढ़ता है)

"× × × × आपका सहृदयतासूचक पत्र मिला। आपकी सहृदयता की मैं सराहना करता हूँ। मुझे सचमुच स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं था कि आप विदेशी होकर भी इतने उदार हो सकते है ! किंतु मुझे दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि आपकी इच्छा पूर्ण न हो सकेगी। क्योंकि राजकुमार अमरसिंह का विवाह हो चुका है। और भाई शक्तसिंह ने पर-तंत्र मेवाड़ मे विवाह न करने का प्रण किया हुआ है। यदि न भी हुआ होता, तो भी मेरे लिए एकाएक ऐसा करना कठिन ही होता। क्योंकि राजपूत लोग इस विषय मे बड़े कट्टर हैं। उनकी इच्छा के विरुद्ध ऐसा करने मे प्रजा मे असंतोष और विप्लव की भावना को जागृत ही करना होता ! और विशेषकर ऐसी अवस्था मे जब कि उन्होंने, पच्चीस वर्ष तक, आपके विरुद्ध रण-भूमि मे, अपना सर्वस्व स्वाहा करके मेरी सहायता की है !

"एक बात और है। यदि हमने आपके राज-कुटुंब की कन्याओं का पाणि-ग्रहण किया, तो इसका यह अभिप्राय होगा कि हमें भी सहृदयता के नाते, अपने राज-घराने की कन्याएँ आपको देने मे संकोच न करना होगा। परंतु इसके लिए लोक-मत को सहसा अपने अनुकूल बनाने की इच्छा भी कितनी भयावह सिद्ध हो सकती है, इस पर आपको गंभीरता से विचार करना चाहिए। और जो राजा लोक-मत की अवहेलना करके मनमाना किया करता है, वह अंत मे धोखा खाया करता है, यह आप भी भली भाँति जानते हैं।

"अब एक ही बात शेष रही है। आपने लिखा है कि— 'मैं आपसे इस बात से बहुत प्रसन्न हूँ कि आपने मिर्जा अब्दुर्रहीमखाँ की बेगम को इज्जत के साथ उसे लौटा दिया। आपके इन पाक विचारों ने मुझ पर बड़ा गहरा असर डाला है, और मैंने तै कर लिया है कि सागरसिह से चित्तौड़ छीन कर आपको दे दूँ'। इससे यह विदित होता है कि आपने अभी सच्चे राजपूतों के चरित्र का ठीक-ठीक अध्ययन नहीं किया है। चाहे संसार इसे उनकी नीति-हीनता और कहानी ही क्यों न समझे, किंतु, सच्चे क्षत्रिय कभी भी इस प्रकार दी हुई वस्तु को स्वीकार नही कर सकते। भगवान ने चाहा, और यदि मेरा स्वास्थ्य ठीक रहा, तो मै स्वयं ही उसे लेने का यत्न करूँगा। इति।—राणा प्रतापसिह।"

अकबर—(सुनकर उदास हो सिर नीचा करके बैठ जाता है)

सलीम—(कुछ क्रुद्ध-सा होकर) अब्बाजान ! आपने उस काफिर को क्या-क्या लिख मारा था ?

अकबर—सलीम ! मुँह बंद करो, वह काफिर नहीं, देवता है देवता !—समझे ?

सलीम—अब्बाजान ! आज आपको क्या हो गया है ? दुश्मन को आप देवता बना रहे हैं !

अकबर—सलीम ! तुम नादानों की-सी बात करते हो । तुम्हीं बताओ, एक खूबसूरत औरत को सामने देखकर भी जिसका दिल काबू से बाहर नही होता, वह कौन होता है ? और जरा अपने ऊपर गौर करके इसका जबाब दो !

सलीम—(सिर नीचा कर लेता है)

अकबर—और सुनो, मैंने जिस लिए प्रताप को वह खत लिखा था । मैं चाहता था कि हिंदू और मुसलमान मिलकर दूध और पानी की तरह एक हो जायँ । इसी लिए मैंने मुल्लाओं और पंडितों का खयाल न करके 'दीन इलाही' मत चलाया था । पर मेरी इच्छा, जैसा कि मै चाहता था, पूरी न हो सकी । वक्त आयगा, जब कि हिंदू और मुसलमान दोनों इस बात को महसूस करेंगे और जब तक कि मुसलमान मक्का, मदीने का खयाल छोड़कर हिंदुस्तान को ही अपना मुल्क नही समझेंगे, तब तक हिंदुस्तान की तरक्की मे कोई न कोई रुकावट पड़ती ही रहेगी । और बिल्लियों की लड़ाई का हमेशा बंदर .फैसला किया करेगा !

(पहरेदार का प्रवेश)

पहरेदार—हुजूर ! खाना तैयार है ।

(यह कहकर प्रस्थान)

प्रताप—देवी ! तुम शायद नही जानती कि अव्यवस्थित जीवन और अति कठिन परिश्रम के कारण मेरा शरीर जर्जरित हो चुका है।

रानी—हाँ नाथ ! सो तो मैं जानती हूँ, परंतु (गला रुँध आता है। फिर सँभल कर गद्गद स्वर मे) मुझे पता नही था कि आप एकदम इतने गिर जायँगे। (सहसा प्रताप के चेहरे की ओर देखकर) ऐ प्राणनाथ ! प्राणनाथ ! आप गिरे-से क्यों पड़ते है ?

प्रताप—(सँभल कर क्षीण-स्वर मे) हाँ, देवी ! न जाने क्यों, चित्तौड़ की ओर देखकर मेरा प्राण-पक्षी (अपनी ओर इंगित करके) इस क्षीण पींजड़े को छोड़कर अनंत मे स्वच्छंद विहार करने के लिए उत्सुक हो रहा है !

रानी—(चौक कर) प्राणेश्वर ! आज अकस्मात् ही यह आपके मुँह से मै क्या सुन रही हूँ ? भला, समस्त मेवाड़ को जीतकर एक चित्तौड विजय करने मे आपको क्या कठिनता हो सकती है ? ऐ वीर प्राणपति ! इस हृदय की दुर्बलता को छोड़िए और चित्तौड़गढ़ की अंतिम विजय के लिए शीघ्र ही समर का आयोजन कीजिए।

प्रताप—देवी ! मुझे दुःख है कि मेरे जैसे कठोर व्यक्ति को तुम्हे युद्ध के लिए उत्तेजित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई ! तुम नहीं जानती, मेरा सिर घूमा जा रहा है ! हृदय डूबा जा रहा है।

(राणा प्रताप चित्तौड़ की ओर फिर देखते हैं और एक अपूर्व वेदना पूर्वक लंबी साँस खीचकर गिरने लगते है। रानी उन्हें बड़ी शीघ्रता से सँभालती है और धीरे धीरे भीतर कुटिया में ले जाकर शय्या पर लिटा देती हैं)

(सहसा अमरसिंह का प्रवेश)

अमरसिंह—(शय्या पर पड़े प्रताप के मुँह की ओर देखकर स्तब्ध सा होकर) माता जी ! पिता जी को आज अचानक यह क्या हो गया ?

रानी—(दुःखी सी होकर) बेटा ! कुछ पता नहीं । केवल इतना ही जानती हूँ कि अकस्मात् चित्तौड की ओर देखकर मूर्च्छित हो गए ।

अमरसिंह—ये भी अपनी धुन के पक्के हैं ! भला, संपूर्ण मेवाड को जीत कर सिर्फ चित्तौड़ के लिए इतनी वेदना ! आखिर चित्तौड़ ईंट-पत्थरों का बना एक तुच्छ भूमि का टुकड़ा ही तो है !

रानी—हाँ, बेटा ! अपना अपना दृष्टि-कोण ही तो है ! तुम्हारे लिए ईंट-पत्थरों का बना एक तुच्छ भूमि-खंड और इनके लिए एक अलौकिक-छटा-चर्चित स्वर्ग-खंड !

अमरसिंह—ठीक है, माता जी ! मै मानता हूँ—चित्तौड़ मे स्वर्गीय वीर आत्माएँ वास करती हैं ! पर वास्तव मे देखा जाय, तो है तो एक तुच्छ भूमि-खंड ही ! फिर इसके लिए अपने अमूल्य प्राणों को क्यों खो रहे हैं ?

रानी—बेटा ! राणा जी के आगे चित्तौड़ को एक तुच्छ भूमि-खंड बता रहे हो ! तुम्हारे ये शब्द कदाचित् राणा जी ने सुन लिए हों, तो तुम क्या उत्तर दोगे ? कुछ गंभीर होकर बातचीत करो, बेटा !

प्रताप—(आँखे खोलकर) अमर ! तुम्हारे मुँह से और ऐसी बात ? (इतना कहकर फिर अचेत हो जाते हैं)

अमरसिंह—माता जी ! पिता जी की अवस्था सचमुच चिंता-जनक हो गई है ! कौन है, यहाँ ?

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(प्रणामपूर्वक) यह मैं हूँ । कुँवर जी ! क्या आज्ञा है ?

अमरसिंह—जाओ, वैद्य जी को एकदम बुला लाओ। उनसे कहना, राणा जी की दशा अत्यंत चिंता-जनक है।

द्वारपाल—जो आज्ञा।

(प्रस्थान)

(भीलराज तथा चंदावत कृष्ण का प्रवेश)

भीलराज—(राणा के मुँह की ओर देखकर) ओह ! यह क्या ? सूर्य-मंडल एकाएक ही अस्ताचल पर लटक पड़ा !

कृष्ण—(विषण्ण-भाव से) महाराज ! जरा आँखे तो खोलिएगा ! अपने सेवकों को कुछ बातचीत करने का अवसर तो दीजिएगा ! निज सेवकों के साथ आप सरीखे महापुरुषों के इस कठोर व्यवहार को कौन सराहेगा ? (दोनो हाथ जोडकर) नाथ ! बस, एक बार तो हमे फिर अपनी पावन तेजोमयी दृष्टि से कृतकृत्य कीजिए ! बस, एक बार इस रूठने का कारण तो बता दीजिए ! (गहरी साँस लेकर सिर नीचा कर बैठ जाता है)

(सब लोग कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहते है ।
सहसा वैद्य जी का प्रवेश)

वैद्य—(नाड़ी-परीक्षा के अनंतर निराश-भाव से) कृष्ण जी ! (इतना कह ठंढी साँस ले माथे पर अगुली लगाकर कुछ सोचने लगते हैं)

कृष्ण—(अधीर-सा होकर) कहिए, वैद्य जी ! आप कहते-कहते क्यों रुक गए ?

रानी—(गद्गद स्वर मे) वैद्य जी ! जो कुछ कहना हो, शीघ्र ही कह दीजिए।

वैद्य—रानी जी ! आप अधिक अधीर न हों ! राणा जी को बाह्य रोग कुछ भी प्रतीत नही होता । किंतु ऐसा जान पड़ता है कि कोई अपूर्व हृदय-वेदना इनके प्राणों को चिपटे हुए है !

रानी—(आँखो में आँसू भर कर करुणा-भरी वाणी मे) जीवितेश्वर ! (दोनों हाथ जोड़ती हुई) कृपा करके वह प्राण-घातिनी मनो-व्यथा प्रकट तो कीजिए ! संभव है, उसका कुछ उपचार हो सके !

प्रताप—(अपनी संपूर्ण प्राणशक्ति संचित कर सहसा आँखे खोलकर क्षीण स्वर मे) असंभव है, देवी ! सर्वथा असंभव है ! (अमरसिंह की ओर देखकर) क्यों अमर ! अब फिर ऐसा कहोगे ? चित्तौड़ और एक तुच्छ भूमि-खंड ! क्यों ऐसी ही बात है न ? (फिर अचेत से-होने लगते हैं)

रानी—(सिसकती हुई) ओ वीर ! स्वातंत्र्य-ज्योति के पतंग ! युवक से भूल हुई ! क्षमा करो, क्षमा करो !

अमरसिंह—(घुटनो के बल गिर पृथ्वी पर माथा टेक अंजलि बाँध कर) क्षमा कीजिए, पिता जी ! क्षमा कीजिए । मुझ से अपराध हुआ ।

प्रताप—(सँभल कर अत्यंत क्षीण-स्वर मे) अमर ! परमात्मा तुम्हें सुबुद्धि दे ! तुम्हारा कल्याण करे ! (चूड़ावत कृष्ण से) अन्य सरदार कहाँ हैं ?

(अन्य सरदारों के साथ गोविंदसिंह का शीघ्रतापूर्वक प्रवेश । सब प्रणामपूर्वक राणा की शोचनीय दशा देखकर स्तब्ध हो जाते है)

प्रताप—(सरदारों की ओर देखकर) प्यारे वीरो ! देखो, स्वतंत्रता की बलि-वेदी को कभी सूनी न होने देना और (अमरसिंह की ओर देखकर) इस अल्हड़ युवक को मार्ग सुझाते रहना।

सब सरदार—जो आज्ञा । स्वतंत्रता का संग्राम अवश्य स्वतंत्रता के चरण चूमेगा, राणा जी !

प्रताप—(विषादमय मुसकराहट के साथ अंतिम स्वर में) ठीक है, प्यारे वीरो ! (एक बार फिर अमरसिंह और बड़े यत्न के साथ चित्तौड़ की ओर देखकर अचेत हो जाते है)

वैद्य—(नाड़ी देखकर) स्वर्गीय प्राण ! तुम्हें हजार बार प्रणाम है ! तुम्हारा यश स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा और अरावली का कोना-कोना तुम्हारी यशो-गाथा गाया करेगा !

(सब प्रणाम करते है)

पटाक्षेप
